पक्षी ग्रंथावली—२

जलचर पक्षी

[हंस, बगुले, बत्तख, सारस, क्रौंच तथा कुररी आदि पक्षियों के आकार-प्रकार, रंग-रूप, निवास तथा जनन-क्षेत्र का वर्णन]

लेखक

जगपति चतुर्वेदी

सहा० सम्पादक 'विज्ञान'

चित्रकार

हरिदास चटर्जी



कि ता ब म ह ल

इ ला हा बा द

प्रथम संस्करण, १९५४

लेखक की अन्य पुस्तकें

- विलुप्त जन्तु
- बिजली की लीला
- समुद्री जीव-जन्तु
- वनस्पति की कहानी
- जीने के लिए
- ज्वालामुखी
- भूगर्भ विज्ञान
- पेनिसिलिन की कहानी
- वैज्ञानिक आविष्कार भाग १, २
- परमाणु के चमत्कार
- कोयले की कहानी
- विलुप्त वनस्पति
- तत्वों की खोज में
- कीटाणुओं की कहानी
- शल्य-विज्ञान की कहानी
- अद्भुत जन्तु
- आविष्कारकों की कहानी
- तारा-मंडल की कहानी
- शिकारी पक्षी
- जलचर पक्षी
- उथले पानी के पक्षी
- धातुओं की कहानी
- आकाशवाणी
- रसायन की कहानी

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७, जीरो रोड, इलाहाबाद।

दो शब्द

हमारे साहित्य में हंसों के मोती चुगने और नीर क्षीर को पृथक् कर लेने के विवेक की मान्यता चिरकाल से प्रचलित आ रही है। परन्तु अब समय आ गया है कि पुराने विश्वासों तथा मान्यताओं को प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण की कसौटी पर कसा जाय। इसके लिए नये दृष्टिकोण से पुस्तकों को पाठकों के सम्मुख रखने की आवश्यकता है। इन ऊहापोहों में हमने हंसों, बगुलों आदि का वर्णन इस पुस्तक में देने का प्रयत्न किया है।

हम यहाँ पर यह कहने की आवश्यकता नहीं समझते कि पक्षी विज्ञान के विशेषज्ञों तथा पक्षियों का जीवन प्रत्यक्ष अवलोकन करनेवालों की दृष्टि में हंस द्वारा मोती चुगने की कोई घटना कभी नहीं देखी गई। यही बात नीर क्षीर विवेक के सम्बन्ध में भी है।

पक्षियों की ग्रंथमाला दुष्कर प्रयास होने से सभी का चित्र पुस्तक में समाविष्ट करना विशेष व्ययसाध्य कार्य होता। अतएव हिन्दी जगत द्वारा इन पुस्तकों की कुछ भी उपयोगिता ज्ञात होने पर अगले संस्करणों में चित्रों की संख्या अधिक करने का प्रयत्न किया जायगा। ये पुस्तकें अधिक पृष्ठ संख्या की होने से विषयप्रधान ही हैं। अतएव सम्भव हुआ तो एकरंगे तथा बहुरंगे चित्रों की पक्षी चित्रावली पृथक् से ही प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायगा। परन्तु बहुत से चित्र इस ग्रंथावली की पुस्तकों में भी दिये जा रहे हैं। पक्षी ग्रंथावली की शेष पुस्तकें भी शीघ्र प्रकाशित हो रही हैं। हमें आशा है कि पाठक इन को देखकर पक्षी पर्यवेक्षण की ओर आकृष्ट होकर ज्ञान-वर्द्धन तथा मनोरंजन का एक नया स्रोत अपने सम्मुख उपस्थित देखेंगे। हिन्दी में हमारे इस अभिनव प्रयत्न को हिन्दी-जगत के विचारवान पाठकों द्वारा प्रश्रय प्राप्त होने तथा प्रकाशक को

सुविधा होने पर अन्य जन्तुओं के वर्णन की पुस्तकें भी देने का प्रयत्न अवश्य किया जायगा।

प्रयाग विश्वविद्यालय के जन्तु विज्ञान विभाग के प्राध्यापक डा० सत्यनारायण प्रसाद एवं डा० उमाशंकर श्रीवास्तव ने अपने सौजन्य के कारण कुछ पुस्तकें प्रदान कर हमारी सहायता की है। उसके लिए हम आभारी हैं। चित्रकार श्री हरिदास चटर्जी के सहयोग के लिए भी पुस्तक की सुन्दरता तथा सरसता के लिए हम विशेष कृतज्ञ हैं। प्रकाशक महोदय के इस व्ययसाध्य आयोजन के लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं समझता। आशा है कि हिन्दी के पाठक इन पुस्तकों द्वारा मनोरंजन तथा ज्ञानवर्द्धन प्राप्त कर सकेंगे।

जगपति चतुर्वेदी

विषय-सूची

जब चिड़िया चुग गई खेत

यथार्थ में जब चिड़ियों ने खेत को चुग लिया हो, अनाज की बालियाँ दाने-शून्य हो गई हों उस समय किसान को पछतावा करने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। काम बिगड़ जाने पर बाद में पछतावा करने की मूर्खता पर ही यह उक्ति चरितार्थ होती है कि "अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत !" बुद्धिमानी तो इसी बात में ही है कि काम बिगड़ जाने के पूर्व ही उसके सुधारने के सब-कुछ प्रयत्न किये जायँ। खेत के चिड़ियों द्वारा चुग लिये जाने के पहले ही तैयार फसल की रक्षा का प्रबन्ध किया जाय। उपदेश या उपमा के लिए तो ये बातें तो बिल्कुल ही युक्तिसंगत हैं, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि पक्षी हमारे लिए इतने अधिक हानिकर हैं कि उनकी भारी उपेक्षा की जाय, उनको अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखा जाय। इसका कुछ सौन्दर्य या प्रकृति-प्रेमी सज्जन तोता, मैना, लालमुनिया पालकर या क्रीड़ा-प्रेमी बुलबुल, तीतर आदि पालकर कुछ अपवाद की भाँति या निषेधात्मक उत्तर दे सकते हैं, परन्तु इस प्रश्न पर विहगम दृष्टि से सांग रूप से विचार करना अधिक श्रेयस्कर हो सकता है।

बेचारा गिद्ध हमारे अस्वास्थ्यकर वातावरण को दूर करने के लिए मृत जन्तुओं को ही आहार बना कर सन्तोष करता है। कौआ भी गंदी वस्तुएँ उदरस्थ कर अपनी विकट पाचन-क्रिया का उदाहरण देता है। श्वेत या भंगी चील मल को भी भक्ष्य बना कर

शूकर की भाँति गंदगी दूर करने में कुछ सहायता करती ही है, परन्तु हमें इन छोटे-मोटे उदाहरणों से अधिक दूर जाने की आवश्यकता है। पत्ती वर्ग तो बड़ा ही विस्तृत समुदाय है, अतएव भाँति-भाँति के स्वभाव वाली बहुसंख्यक पत्ती जातियों की छान-बीन करना कुछ लाभप्रद हो सकता है। विद्वानों ने इन सम्बन्धों में जो खोजें की हैं तथा निष्कर्ष निकाले हैं उनकी चर्चा कर ही इस प्रश्न का सांगोपाङ्ग रूप कुछ समझ में आ सकता है। उसके सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा निकाले निष्कर्ष देख कर तो हमें पक्षियों के सम्बन्ध में दाँतों तले उँगली दबानी पड़ जाती है।

कृषकों के ऊपर आने वाली दैवी विपत्तियों में अतिवृष्टि या अनावृष्टि की ही भाँति शलभों (टिड्डियों) का भारी संख्या में आगमन भी है । आज वैज्ञानिक साधनों से उनके उत्पन्न होने के सुदूर देशों में क्षेत्र तथा विनाश कार्य के लिए अभियान की सूचना पाकर उनके यथास्थान नष्ट करने की विधि की जाती है। ये टिड्डियाँ किसानों या मनुष्य से कोई शत्रुता की भावना रख कर ही उत्पन्न नहीं होतीं, परन्तु उनकी उत्पत्ति इतनी अधिक संख्या में होती है तथा वे इतनी अधिक हरियाली खा जाती हैं कि उनके इन कृत्यों से ही उन स्थानों की खेती ही नहीं, बल्कि बाग-बगीचों का भी सत्यानाश हो जाता है, जहाँ इनका आगमन होता है। अतएव हम देखते हैं कि केवल भारी संख्या में उत्पन्न होना तथा सहज रूप से दैनिक-जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत अधिक हरियाली चट कर जाना ही मनुष्य के लिए एक भारी विपत्ति का साधन हो जाता है। भारी सन्तानोत्पादन तथा विकट मात्रा में खाने वाली टिड्डियाँ पुराने समयों में ही भीषण संहारकारी नहीं रही हैं, प्रत्युत आज भी हैं। उनका अत्यन्त भारी दल जब आकाश में उमड़ कर चलने लगता है तो कृत्रिम सूर्य ग्रहण का ही दृश्य उपस्थित हो जाता है।

सूर्य की किरणें हम तक नहीं पहुँच पातीं, मानों कोई बड़ी गहरी तह का विशालकाय बादल सूर्य को छिपा रहा हो। कहीं कुछ घंटों के लिए ही इन्होंने आकाश को छोड़ कर पृथ्वी पर धावा किया तो फिर कहीं हरी वस्तु नाम के लिए भी देखने को छूटी नहीं रह सकती।

टिड्डियों की सन्तानोत्पादन-गति उल्लेखनीय ही है। मादा टिड्डी अपने अण्डे एक कवचीय नली में भूमि के अन्दर देती है। प्रत्येक कवचीय नली में लगभग १०० अंडे होते हैं तथा प्रत्येक मादा टिड्डी इस प्रकार की कई कवचीय नलियों में अंडे देती है। दक्षिण अफ्रीका के एक कृषि-क्षेत्र में लगभग तीन हजार एकड़ भूमि में खोदने पर लगभग ४०० मन अण्डे प्राप्त किये गये। इन अण्डों से प्राप्त होने वाली टिड्डियों की संख्या सवा अरब तक पहुँच सकती है। इस सन्तानोत्पादन वेग को देख कर हम समझ सकते हैं कि इनको नष्ट करने की कोई प्रभावोत्पादक व्यवस्था न हो तो कितना भयंकर अनिष्ट अनिवार्य रूप से हो सकता है। इस संहार-कार्य में हमारे पक्षी अवश्य ही भारी सहायता पहुँचाते हैं, इसलिए प्रत्यक्ष नहीं, तो अप्रत्यक्ष रूप से यह बड़ा भारी लाभ ही है।

यह अनुमान किया गया है कि कीड़े-मकोड़े यदि अनियंत्रित रह सकें तो तीन वर्ष में सारी पृथ्वी की हरियाली सर्वथा विनष्ट ही हो जाय। किन्तु नियंत्रित होने पर भी केवल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ही आज भी कीड़े-मकोड़ों द्वारा प्रति वर्ष दो अरब डालर की हानि कूती गई है। जन्तुओं की जातियों की पूर्ण संख्या के आधे तो कीट की ही जातियाँ होती हैं। उस पर भी तुर्रा यह कि कीटों को वे ही वनस्पति अधिक प्रिय होते हैं जिन्हें मनुष्य अपने आहार के लिए उगाता है।

कीटों के प्रमुख शत्रु पक्षी होते हैं। संसार में पक्षियों की कुल

जातियाँ १३,००० के लगभग हैं। इनमें उत्तरी अमेरिका में लगभग ८५० जातियाँ पाई जाती हैं। किसी एक क्षेत्र में पक्षियों की २०० जातियाँ पाई जा सकती हैं। परंतु कीटों की जातियाँ तो संख्यातीत-सी ही जान पड़ती हैं। शोधकर्ताओं ने ज्ञात किया है कि केवल न्यूयार्क नगर के आस-पास पचास मील तक के घेरे में कीटों की १५,००० जातियाँ विद्यमान हैं। इनमें से बहुत से कीट मनुष्य के लिए हानिप्रद ही होते हैं। भारत में कीटों की ३०,००० जातियाँ गिनी जा सकी हैं। पक्षियों की जातियाँ इसकी दशमांश संख्या की ही हैं। ये अगणित कीट वर्ग जीवित जन्तुओं तथा वनस्पतियों को ही अपने आहार का आधार बनाते हैं। इन भयानक शत्रुओं की संख्या न्यून करने में पक्षी हमारी जो कुछ भी सहायता कर पाते हैं, वह मानव जाति की महत्त्वपूर्ण सेवा ही है।

कीटों की उत्पत्ति-संख्या अनुमानित करने के अनेक उद्योग किये गये हैं। हमें यह जानने की उत्सुकता हो सकती है कि किसी कीट का एक जोड़ा एक निर्धारित समय में कितनी संतानें उत्पन्न कर सकता है। यदि उन्हें अनियन्त्रित रूप में सन्तानोत्पादन करते रहने दिया जाय तो उनकी संख्या कुछ ही समय में इतनी अधिक हो सकती है कि उसकी गिनती बता सकना दुरूह कार्य ही हो जाय। उन संख्याओं को सुन कर हम अत्यन्त ही स्तब्ध हो सकते हैं।

कनाडा के एक कीट-विज्ञानवेत्ता ने ज्ञात किया है कि एक कोलोरडो कीट या आलू विध्वंसक कीट, जिसके परिवार के अन्य कीटों की लगभग २०,००० जातियाँ संसार भर में फैली हैं और भारत में भी यथेष्ट संख्या में हैं, यदि एक जोड़ा ही अपनी संतान-उत्पादन क्रिया अबाध रूप में करता जाय तो-एक मौसम में ही छः करोड़ कीट उत्पन्न हो जायँ। एक अन्य वैज्ञानिक ने ज्ञात किया कि

घास और अन्न के पौधों को भारी हानि पहुँचाने वाला एक कीट वर्ष भर में अपनी तेरह पीढ़ियाँ उत्पन्न कर लेता है किंतु यह अबाध रूप में ही सन्तानोत्पादन करते रह सकने पर ही सम्भव है। इस एक जोड़े कीट को वर्ष भर तक ही अनियन्त्रित रूप से अपनी संतान उत्पन्न करने देते रहने से बारहवीं पीढ़ी के पश्चात् कीटों की जितनी संख्या हो जायगी उसकी संख्या अंकों में बताना कठिन-सा ही है। यदि इन कीटों को प्रति इंच की लम्बाई में दस की संख्या में रख कर कोई लंबी पंक्ति बनाई जाय तो वह पंक्ति इतनी विशाल हो सकेगी कि प्रकाश को भी अपनी प्रति सेकण्ड १८,६,००० मील की गति से उस पंक्ति के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचने में ढाई हजार वर्ष लग सकते हैं।

एक नवजात कीट (इल्ली) अपने शरीर के तौल की दुगुनी पत्तियाँ प्रति दिन खाता पाया जाता है। कतिपय मांस-भक्षी इल्लियाँ दिन-रात में अपने शरीर के तौल का २०० गुना आहार उदरस्थ कर लेती हैं। हिसाब लगाया गया है कि एक रेशम का कीड़ा केवल ५६ दिनों में अपने जन्म के समय के शरीर के तौल का ८६,००० गुना भोजन कर चुका रहेगा। टिड्डियों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात कही जा सकती है।

पक्षियों का अधिकांश भोजन साधारणतया कीट ही होते हैं जिन में से कितने हमारे लिए अत्यधिक हानिकर होते हैं। अनेक पक्षी केवल इन कीटों का ही संहार कर उनको अपना भोजन नहीं बनाते। बल्कि उनके अंडे-बच्चे भी ढूँढ़-ढूँढ़कर खाते रहते हैं। टिड्डियों की भारी भीड़ में से तो पक्षी बहुतों को उदरस्थ कर अपना प्रीतिभोज-सा ही मनाते हैं। श्वेत बक शलभों का विख्यात ध्वंसक है। मध्य एशिया में स्वभावतः रह कर सन्तानोत्पादन करने वाले पाटल सारिक (गुलाबी मैना) के दल इन कीटों के जन्म-

स्थान के निकट ही निवास कर इन कीटों द्वारा ही अपने शिशुओं की उदरपूर्ति करते तथा स्वयं भी कुछ उन कीटों को भोजन का आधार बनाते हैं।

पक्षी कीटों की कितनी मात्रा नष्ट करने में समर्थ होते हैं, इसका कुछ अनुमान हम उनके दैनिक जीवन पर दृष्टि डाल कर कर सकते हैं। जब नवजात पक्षी अपने आहार के लिए माता-पिता पर ही आश्रित रह कर वृक्ष के कोटर या पत्तों के घोंसले में ही पड़ा रहता है तो अपने शिशु को खिलाने की चिंता में आतुर मादा या नर-मादा दोनों को ही निरंतर दौड़-धूप करते पाया जाता है। प्रारंभिक कुछ दिनों तक ये अधिकांश नवजात पक्षी दिन रात में प्रति दिन अपने शरीर के तोल से अधिक आहार चट कर जाते हैं। अपने शिशु पक्षियों को खिलाने के लिए सारिक (मैना) पक्षी को टिड्डा, टिड्डी, नवजात कीट आदि आहार लेकर अपने घोंसले में एक दिन में ३७० बार आते देखा गया है। एक पक्षी-विज्ञान-वेत्ता ने तो ग्राम कुलिंग (घरेलू गौरैया) को नवजात कीट, कोमलांगी कीट आदि का आहार प्रतिदिन २२० से २६० बार तक अपने घोंसले में ले जाकर शिशु पक्षी को देते देखा है। जर्मनी के एक पक्षी-विज्ञान-विशारद का कथन है कि वल्गुली (राम गंगरा या राम पक्षी) का एक जोड़ा अपने शिशुओं के साथ मिला कर प्रति वर्ष बारह करोड़ कीड़ों के अंडे या डेढ़ लाख नवजात कीटों या कोशावस्था के कीटों को खा जाता है। कीटों के साथ पक्षियों का इतना संहार-कार्य केवल उसी समय नहीं होता रहता जब उनकी सर्वाधिक वृद्धि हुई होती है, बल्कि बारहों मास यह विनाश-कार्य चल कर ही सृष्टि के बढ़ते हुए कीट-भार को न्यून करता रहता है। कीट रूप आततायी के लिए कभी युगों में एक बार पक्षी रूप विनाशक कृष्ण, राम आदि का जब-तब अवतार नहीं होता बल्कि

प्रतिक्षण ही उनको अपनी कर्तव्यपरायणता दिखा कीट रूपी आसुरी सृष्टि की संहार-लीला में संलग्न ही रहना पड़ता है, किंतु इस ओर हमारा केवल ध्यान भर नहीं जाता, यदि हम में आस्था भावना होती तो पक्षी देव की ओर से कीटासुरों के बध को "विनाशाय च दुष्कृताम्" की उक्ति देकर गर्वोक्ति पूर्वक "संभवामि युगे-युगे" की पुनरावृत्ति कर कह उठते कि "संभवामि पले-पले।"

इन दशाओं में जो लोग पक्षी का बध करते हैं, उनको अवश्य ही असुर जगत की वृद्धि का कलंक लगाना उपयुक्त हो सकता है। जहाँ पर अनावश्यक रूप से पक्षियों का शिकार नहीं होता, वहाँ कीट जगत बहुत बढ़ने नहीं पाता। प्राकृतिक रूप में बढ़ने वाले कीटों को प्राकृतिक रूप के पक्षी अपने संहार कृत्य से सदा संतुलित ही रख सकते हैं, परन्तु मनुष्य तो अपनी बुद्धि लगा कर नये-नये कीटों को भी किन्हीं क्षेत्रों में प्रचार करता है। उन नई विपत्तियों को स्थानीय पक्षी नष्ट करने का विधान नहीं जानते। अतएव उनकी वृद्धि बड़ा अनिष्ट करती पाई जाती है।

कुछ पक्षी शिकारी कहे जाते हैं। वे मनुष्य की पालतू मुर्गियाँ, मुर्गाबियाँ आदि खा जाने के अपराधी हैं। किंतु हम यह भूल क्यों जाते हैं कि वे असंख्य चूहों तथा अन्य आततायी जन्तुओं का भी संहार करते हैं जो हमारा बड़ा अहित किया करते हैं। ये जंतु हमारे दाने ही चट नहीं कर जाते, बल्कि भयंकर रोगों का भी प्रसार करते हैं। अतएव उनका संहारक बन कर शिकारी पक्षी क्या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे हितकर नहीं सिद्ध होते? सिंध में धान की फसल का अर्द्धांश भाग तक एक चूहे की जाति के जन्तु से विनष्ट हो जाने का अनुमान किया गया है। यह जन्तु साल भर बच्चे देता रहता है तथा एक बार अठारह बच्चे तक उत्पन्न करता पाया जाता है। अन्य चूहे भी कम संहार नहीं करते। अतएव शिकारी पक्षी इनके

संहार के लिए उद्यत होकर अपनी उदर-पूर्ति करते हुए हमारी भी सहायता करते हैं।

चूहों की तीव्र संतान-वृद्धि की कल्पना हम नहीं करते होंगे। विशेषज्ञों ने ज्ञात किया है कि चूहे एक-एक बार में आठ-आठ बच्चे देते हैं तथा साल भर में छः बार संतान-उत्पत्ति करते हैं। नई संतान भी ३½ मास पश्चात् स्वयं संतानोत्पादन में प्रवृत्त हो जाती है। अतएव केवल एक जोड़े चूहे से साल भर में ही ८८० संतान उत्पन्न हो जा सकती है। यदि इनकी संख्या न्यून करने का कोई साधन न हो तो इनकी भारी संख्या के उत्पात से हम त्राहि-त्राहि ही कर उठें। यदि एक जोड़े चूहे की संतान को ही अनियंत्रित रूप से बढ़ने तथा सन्तानोत्पादन करते रहने दिया जाय तो पाँच वर्षों में कुल चूहों की संख्या साढ़े नौ खरब हो जाय। कुशल यह है कि प्रकृति कभी इतनी अनियंत्रित जीव-सृष्टि होने ही नहीं देती। उसके नियन्त्रण के अपने अनोखे प्रबन्ध हैं। उन्हीं में हम शिकारी पक्षियों को भी पाते हैं।

इन हिसाबों को समझ कर हम कह सकते हैं कि शिकारी चिड़िया, आज एक चूहे को भी खाती है तो वर्ष भर में उसकी ८८० संख्या वृद्धि होने पर उस समय रुकावट डाल देती है। किंतु उलूक तथा अन्य रात्रिचारी पक्षी तो मुख्यतः चूहों का ही आहार करते हैं। अतएव उनके द्वारा इनकी यथेष्ट संख्या न्यून होती है। एक बार उलूक के उदर का निरीक्षण करने पर दो या तीन चूहों का उदरस्थ होना प्रमाणित हो सका है, परन्तु पक्षियों का पाचन प्रबल होता है, इसलिए वह दिन-रात में कई चूहों को आहार बनाता होगा।

पक्षियों का भोजन जहाँ अन्न का दाना तथा कीट, पतंग, चूहे आदि है वहाँ खेतों की निराई करने में सहायक रूप के भी पक्षी

होते हैं जो निरर्थक तथा फसलों की वृद्धि रोकने वाले हानिकर वनस्पतियों के बीज खा जाते हैं। अनेक पक्षियों का अधिकांश भोजन इन घासों का बीज ही होता है। गौरैया, बटेर (वर्तीर), तूती (चटक) आदि पक्षी लाखों मन घासों के बीज प्रति वर्ष खा जाते हैं। पक्षी-विज्ञान-वेत्ताओं ने अध्ययन कर देखा है कि छोटी गौरैया (तरु कुलिंग) प्रतिदिन लगभग आधी छटाँक घासों के बीज खा जाती है। इतनी थोड़ी मात्रा भी बहुसंख्यक पक्षी खाते हों तो खेती को कितना अधिक लाभ हो सकता है तथा खेतों में अनावश्यक घास-पात की वृद्धि रुकती है। यदि पक्षी घास-पात के बीज खाकर सहायता न पहुँचाते तो खेती के लिए हमें अनाज के पौधे उगाने में भारी बाधा पड़ती।

शिकारी पक्षियों के भी हानिकर तथा लाभकर कृत्यों का औसत लगा कर देखा गया है कि थोड़ी जातियाँ ही ऐसी होती हैं जो केवल हानिकर ही होती हैं तथा थोड़ी जातियाँ ऐसी होती हैं जिनके द्वारा हानि तथा लाभ का लेखा बराबर होता है, परन्तु इनसे अधिक संख्या की जातियाँ पूर्णतया लाभकर होती हैं तथा अधि-कांश रूप से लाभ पहुँचाने वाली शिकारी चिड़ियों की जातियाँ तो इन सब से कई गुना अधिक होती हैं। रक्तपुच्छ श्येन को मुर्गी का शत्रु कहा जाता है किंतु इसे मुर्गियों का आहार तो सात प्रतिशत तथा अनिष्टकर जन्तुओं का आहार दो-तृतीयांश करते पाया जाता है किंतु अन्य श्येनक अवश्य कुछ अधिक हानि पहुँचाते हैं।

वनस्पति जगत में गति शक्ति नहीं होती परन्तु उनमें फूलों में नर और मादा के भेद पाये जाते हैं। नर पुष्प में वीर्यकोष या परागकण होते हैं। मादा पुष्प में रजकोष होते हैं। इन दोनों प्रकार के जननकणों का संयोग हुए बिना नई उत्पत्ति नहीं हो सकती। वायु या जल के प्रवाह से इनका संयोग कहीं-कहीं होता है। इस

संयोग क्रिया को परागण कहते हैं। रजकण से परागकण का जब संयोग होता है तो सन्तानोत्पादन की आवश्यक विधि पूर्ण होती है। यदि वायु तथा जल-प्रवाह या अन्य साधनों से ऐसे संयोगों के अवसर न आवें तो वनस्पति जगत की सृष्टि क्रिया ही विनष्ट हो जायगी। इस आवश्यक कार्य में पक्षी बड़े सहायक हैं।

पुष्पों के परागण में हम मधुमक्खियों तथा भ्रमरों का बहुत अधिक नाम सुनते हैं, परन्तु मधुमक्षी की जगह लेने वाला अत्यन्त क्षुद्रकाय एक पक्षी भी होता है जिसे मधुपक्षी कहना ठीक होगा। उसके शरीर में पतत्र (पर) तथा पंख उसकी गिनती पक्षी वर्ग में कराने में तनिक भी सन्देह उत्पन्न करने का अवसर नहीं देते। परन्तु उनका आकार इतना छोटा होता है कि उनके पतत्र उखाड़ दिये जायँ तो शरीर का आकार एक मधुमक्खी के ही बराबर दिखाई पड़े। यह मधुपायी पक्षी या मधुपक्षी निरन्तर उड़ता तथा फूलों का मधुपान करता ही समय व्यतीत करता है, परन्तु इससे बड़े आकार के भी पक्षी होते हैं जो मधुपायी पक्षी का ही मार्ग अनुसरण कर फूलों के परागण में सहायता पहुँचाते हैं। इनमें फुलचुही तथा शक्करखोरा का नाम लिया जा सकता है। अपनी लंबी चोंच ये पुष्प नलिका में प्रवेश कर पुष्प के आधार तल में लुब्ध करने के लिए रक्खी मधु को अपनी लम्बी जीभ से चख लेते हैं परन्तु मधुपान का उन्हें अनजाने ही मूल्य चुकाना पड़ता है। उनके पतत्रों में परागकण ऊपर ही होने से चिपक गये होते हैं। जब यह किसी दूसरे पुष्प पर अनायास ही बैठ कर पुनः मधुपान में लिप्त हुए रहते हैं तो पहले पुष्प का पराग या वीर्यकण वहन कर वहाँ तक वे पहुँचा कर भी इस क्रिया का अनुभव नहीं करते। उस दूसरे पुष्प का रजकण उस परागकण को ग्रहण कर सेचित या गर्भाधानयुक्त हो जाता है और वनस्पति जगत में सन्तानोत्पत्ति का क्रम सहज ही अग्रसर होता है।

इन दशाओं में कौतूहलप्रिय सज्जन पूछ सकते हैं कि क्या परागण के कारण पक्षी का सहारा वनस्पति के लिए अत्यावश्यक है। अतएव वनस्पति को पक्षी का आश्रित माना जाय अथवा अपने मधु ही नहीं, प्रत्युत फल, फूल आदि से भी आहार का साधन बनने तथा बैठने का भी आश्रय देकर वनस्पति ही पक्षियों के प्रश्रयदाता तथा जीवनाधार हैं ? कीटों का जगत वृक्षों पर आश्रित होने से पक्षियों का आहार अप्रत्यक्ष रूप से इस दृष्टि से भी वनस्पति पर अवलम्बित है। परन्तु सृष्टि में यह अन्योन्याश्रय की शृङ्खला तो इतनी जटिल है मुख्य और गौण का निर्णय सहज नहीं।

छोटे वनस्पतियों में ही पक्षियों द्वारा परागण की क्रिया में सहायता नहीं पहुँचती बल्कि बड़े वृक्षों में भी इसकी आवृत्ति देखी जाती है। हमारे देश में दियासलाई की तीली बनाने के लिए एक वृक्ष की लकड़ी बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। इस वृक्ष के सुन्दर लाल फूलों पर पक्षी सहज ही आकृष्ट होकर मधुपान करने पहुँचते हैं तथा अन्य वृक्षों के फूलों पर जाकर परागण में सहायक बनते हैं जिससे इसकी नयी उत्पत्ति का साधन उपस्थित होता है। इस वृक्ष के पुष्प में प्रचुर मधु विद्यमान होता है, अतएव बहुसंख्यक पक्षी इसकी ओर आकर्षित होते हैं। लगभग ६० प्रकार के पक्षियों का इस पुष्प पर लुभा जाना तथा मधुपान करना देखा गया है। इस प्रकार इसके बीज प्रचुर संख्या में उत्पन्न हो कर प्रसारित होते हैं और बहुसंख्यक वृक्ष उत्पन्न होकर दियासलाई के लिए सहज सुलभ, उत्कृष्ट तथा प्रचुर काठ उत्पन्न करते हैं।

परागण को छोड़ कर भी पक्षी वृक्षों की उत्पत्ति में सहायता करते हैं। वे भाँति-भाँति के वृक्षों के फल खाते हैं तथा उनके बीज अपने बीट के साथ कहीं अन्यत्र गिरा आते हैं। उनकी आँतों में होकर बाहर निकला हुआ बीज अपनी उत्पादन-शक्ति तनिक भी

नष्ट नहीं करता। अतएव किसी दूर स्थल पर गिर कर उपयुक्त अवसर पाते ही वह नये वृक्ष उत्पन्न करने का उपक्रम कर सकता है। बीजों की कितनी भारी संख्या पक्षी खा लेते हैं इसका एक उदाहरण हमें कृष्ण शीर्ष पीलक (भारत सुग्रीव काँचन) पक्षी द्वारा मिलता है। एक पीलक (पियरो) पक्षी को ३ मिनट में ७७ झरबेरियाँ निगल जाते देखा जा सका है। वे अन्यत्र पहुँच कर इसकी नयी उत्पत्ति करने में सहज ही सहायक हो सकते हैं।

एक दूसरा उदाहरण एक दूसरे वृक्ष का है जो मेक्सिको से सीलोन में पहुँचा था। इसके बीज केवल आभूषण की भाँति प्रयुक्त होने के लिए आज से एक शताब्दी पूर्व सीलोन में आये थे। उसे कहीं गिर कर उत्पन्न होने का अवसर मिला। फिर पक्षियों ने उसके बीज को अन्यत्र फैलाया। आज भारत में उसकी अत्यधिक संख्या पटी पड़ी पाई जाती है। वह खेती के लिए अभिशाप ही बन गया है।

फुलचुही तथा शक्करखोरा आदि पक्षी एक अन्य परोपजीवी वृक्ष के प्रसार के प्रधान कारण हैं। यह वनस्पति अपने फूलों को भी इन पक्षियों द्वारा संचित कराता है तथा बीज भी उनके ही द्वारा प्रसारित कराता है। इसकी भारत भर में मिलने वाली जाति इन पक्षियों का ही प्रसाद है। चन्दन के वृक्ष को उत्पन्न करने में उसके बीज बुलबुल तथा बसंता पक्षी द्वारा प्रसारित होने से सहायता प्राप्त होती है। अतएव दक्षिण भारत में चन्दन के व्यवसायी इन पक्षियों का सादर स्वागत करते हैं। शहतूत का वृक्ष भी पक्षियों की सहायता द्वारा ही प्रसारित होता है। पक्षियों के बीट के साथ गिर कर यह बीज उगने में पूर्ण समर्थ होता है। अतएव उर्वर भूमि में नया वृक्ष सहज उत्पन्न हो सकता है।

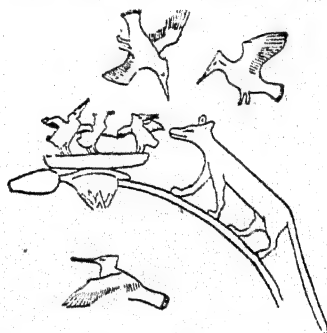


पक्षियों का चित्रांकन

अपने सौंदर्य, रूपवैचित्र्य एवं महत्त्व के कारण पक्षियों का जंतु-जगत में विशेष स्थान है। अतएव उनके चित्र अंकित करने का प्रयत्न संसार के विभिन्न देशों के विभिन्न चित्रकारों ने अपनी चित्रांकन-चातुरी के अनुसार भिन्न-भिन्न युगों में करने का प्रयत्न किया। प्रागैतिहासिक काल में भी जब कला-कौशल के आदिम उद्भव का भी ठीक अवसर नहीं हो सकता था, हम मनुष्य के हृदय में पक्षियों के प्रति एक भावना या आकर्षण का प्रमाण पाते हैं। पुराप्रस्तर युग में भी दक्षिणी फ्रांस तथा स्पेन में मानवों ने अपने इस आकर्षण को प्रस्तर-पट पर खचित कर हमारे अवलोकन की सामग्री सुरक्षित की। यह सत्य है कि उन गुफाओं की प्रस्तर-भित्ति पर चित्रित वस्तुओं में पक्षी बहुत कम ही हैं, परन्तु उस घोर पुरातन युग का स्वरूप अपने हृदय में कल्पित कर हम समझ सकते हैं कि वह युग कला या विज्ञान का नहीं था। फलतः कुछ मंत्र-तंत्र, जादू-टोना आदि के प्रसंग में कुछ चित्र बन सकते थे जिनमें यदि पक्षी भी खप सकते तो उनकी कुछ रूप-रेखा चित्रित या खचित करने का प्रयत्न किया जा सकता था। प्राचीन मानव के अंध-विश्वासों में हम बड़े जंतुओं को अधिक स्थान पाते देखते हैं। फलतः प्रस्तरखचित चित्रों के उन प्राचीन उदाहरणों में मैमथ (प्राचीन समय का ध्रुवीय हाथी) गेंडा तथा बीसन को ही अधिक स्थान पाते देखते हैं किन्तु कभी-कभी सारस, महाबक, बक आदि बड़े आकार के पक्षियों को भी उन चित्रों के अतिरिक्त गुफाओं की

दीवालों पर चित्रित पाते हैं। इनको चित्रित के स्थान पर खुदा हुआ कहना अधिक उपयुक्त हो सकता है।

लस्का की गुफा का वर्तमान काल में अनुसंधान कर ऐसे चित्र का दर्शन करने का अवसर प्राप्त हो सका है जिसमें एक आहत बीसन दिखाया गया है। उसका शरीर भाले से विद्ध है। उसके सम्मुख एक मनुष्य का मृत शरीर अंकित है जिसके साथ भाला फेंकने का उपकरण तथा एक पवित्र दंड है। मनुष्य का मुख पक्षी

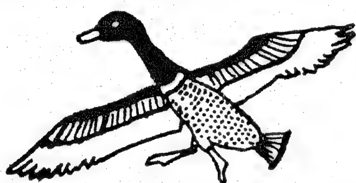


विडाल पर आक्रमण करते हुए कपर्दिक मीनरंक (किलकिला)
(मिस्र की चार-पाँच हजार वर्ष पुरानी प्राचीन समाधि में भित्ति-चित्र)

वत है तथा उसके पवित्र दंड पर भी एक पक्षी बैठा है। यह निस्संदेह ही ऐसे युग के ऐसे पुरुष का चित्रित करने वाला दृश्य है जब मनुष्य के किसी समाज या दल में पक्षियों को कोई मान्यता प्राप्त थी। उनका चिह्न किसी शुभाशुभ भावना या सामाजिक आदर-सम्मान-पद का प्रतीक था। फलतः अपने अंधविश्वास से उस व्यक्ति को कदाचित् ऐसे विश्वासग्रस्त मानव वर्ग ने नेता मान कर पवित्र दंड तथा मुखाकृति को पक्षी का बाना धारण करा कर अंध-विश्वास का मूर्त रूप दिया था।

दक्षिणी स्पेन के टाजो सेगुरा नाम की गुफा में प्राप्त भद्दे खिंचे हुए पक्षी-चित्रों को नव प्रस्तर युग का अनुमान किया जाता है। उनमें ऐसे पक्षियों का चित्र अंकित ज्ञात होता है जो पहचानने योग्य अवस्था में होने पर उन पक्षियों के चित्र हैं जो आज भी उस क्षेत्र में पाये जाते हैं। उन पक्षियों में महासारंग, द्रोण काक, दर्वीमुख या चमचबाज, नीलारुण, अम्बकुक्कुट तथा वक हंस या हंसावर आदि हैं।

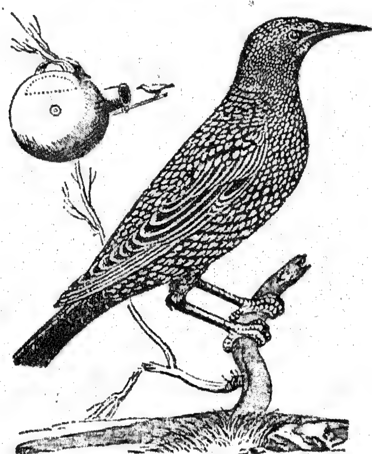
सर्वप्रथम कलात्मक रूप के पक्षी-चित्रांकन का उदाहरण मिस्र की प्राचीन समाधियों के भित्ति-चित्रों में मिलता है। चित्रविद्या के पारखियों की दृष्टि में सौन्दर्य, सौष्ठव तथा यथार्थरूपता की दृष्टि से



नीलग्रीव हंसक (नील सिर)
(मिस्र की चार-पाँच हजार वर्ष पुरानी एक समाधि में)

वे प्राचीन चित्रों के उत्कृष्टतम उदाहरण हैं, किन्तु सन् २५०० ईसा पूर्व के बाद इस चित्र-विद्या को गिरती अवस्था में पाया जाता है। मिस्र के जो प्राचीन चित्र सर्वोत्कृष्ट हैं, उनकी उत्कृष्टता के समकक्ष पक्षियों के चित्र पाश्चात्य सभ्य जगत में साढ़े चार हजार वर्षों बाद, उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व तक नहीं प्राप्त हो सकते। आ० ई० मोरो नाम के चित्रविद्याविशारद के मत से ४५ पक्षियों की पहचान स्पष्ट रूप से की जा सकती है। जो चित्र रंगीन नहीं हैं, उन चित्रों में पक्षी की ठीक पहचान एक कठिन समस्या है। बाह्य रूप-रेखा के

कुछ स्पष्ट आकारों से जिन पक्षियों की जाति पहचान कर सकना संभव है, उन्हीं को इन चित्रों में से पहचाना जा सकता है। जब विविध अंगों को विविध रूप में चित्रित कर सकने के रंगों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ तो प्रारम्भिक उद्योग प्राय: अशुद्ध ही हो सकता था। पक्षियों के विविध रूपों में इतने विभिन्न विचित्र रंग होते हैं कि उस युग में प्राप्त रंगों से उनका ठीक चित्रण करना सर्वथा

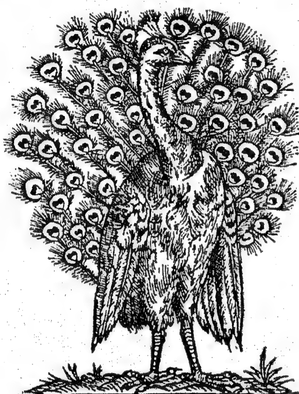


पारुष्ण तैलपक (सारिक)
(सन् १६८४ में चित्रित)

कठिन था। अतएव रंग बनाने की असंतोषजनक जानकारी के कारण जब कोई उपयुक्त रंग नहीं बनाया जा सकता तो उसकी जगह कोई अन्य ही रंग प्रयुक्त कर लिया जाता। यह उस चित्र को प्राकृतिक रूप से यथेष्ट दूर पहुँचा देता।

आक्सफोर्ड के एक संग्रहालय में माइसीनिया के चित्रकारों के प्राचीन चित्र सुरक्षित हैं। उनके देखने से ज्ञात होता है कि माइ-

सीनिया (यूनान का एक प्राचीन नगर) के निवासी काँसे युग की सभ्यता का प्रवर्तन कर नोसस में अपनी अन्य प्राचीन कृतियों के अतिरिक्त चित्रांकन का जो उदाहरण छोड़ गये हैं, वे उत्कृष्टता में मिस्र के प्राचीन चित्रों से निष्कृष्ट कदाचित ही कहे जा सकते हैं। इन चित्रों में यूनान के तीतरों तथा हुदहुदों को चित्रित किया गया है। यूनान की भव्य सभ्यता के उत्कर्ष काल में पक्षियों के चित्रांकन का कोई प्रयत्न नहीं प्रतीत होता। रोम की सभ्यता के उदयकाल



मयूर
(१५५५ में चित्रित)

में पक्षियों को प्रायः रंगीन क्षुद्र प्रस्तरखंडों के जमाने से बनी फर्श के साथ बनाने का उद्योग दिखाई पड़ता है। परन्तु पक्षियों के चित्रांकन के लिए यह माध्यम अनुपयुक्त था। पाम्पाई में भित्ति-चित्र रूप में भड़कीले रंग में बने पक्षियों के अनेक चित्र मिलते हैं। मध्ययुग में पक्षियों के चित्रित होने का दृश्य देखने को मिलता है। परन्तु वह हस्तलिखित पुस्तकों के हाशिया की सजावट रूप में

ही है। श्येन-विज्ञान की पुस्तकों में उन्हें विशेष चित्रित पाया जाता है। बारहवीं शताब्दी के अन्त से तेरहवीं शताब्दी के मध्य तक सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय का शासन काल ऐसे अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ श्येन-विज्ञान पर प्रस्तुत कर सका था। कुछ पक्षियों को प्राचीन काल में लोग शुभ मानते थे और किसी धार्मिक चित्र के लिए उसे पृष्ठभूमि में रखना उचित समझते थे। ऐसे पक्षियों में स्वर्णचटक (तूती) का नाम लिया जा सकता है।

हालैंड ने भी चित्रकला का अभ्युदय-काल देखा। वहाँ के धन-सम्पन्न तथा सामन्त वर्ग तत्कालीन चित्रकारों से विलक्षण पक्षियों का चित्र अंकित करवाते। ऐसे ही चित्रों में हमें आज डोडो पक्षी का रंग-रूप ज्ञात हो सका है, जो संसार से अपने पूरे वंश को नष्ट कर आज विलुप्त जन्तु बन चुका है।

पंद्रहवीं शताब्दी ने मुद्रण-कला का प्रवर्तन कर सभ्यता की अभि-वृद्धि का एक प्रबल साधन संसार के सम्मुख रक्खा। ज्ञान विज्ञान तथा साहित्य की प्रगति तथा प्रचार के साथ चित्र-विद्या ने भी अपना पक्ष पुष्ट करने का अवसर प्राप्त किया। पुस्तकों को सुन्दर, आकर्षक रूप देने के लिए चित्रों की आवश्यकता होती। उसके लिए काठ के ठप्पों पर चित्र उभाड़ कर काम लेना प्रारम्भ किया गया। कालान्तर में जब काठ के ठप्पों का स्थान धातु के चित्र या ब्लाकों ने लिया तो चित्र विद्या में एक प्रकार से युगान्तर उपस्थित करने का माध्यम प्राप्त हो सका। काठ के ठप्पों से छपे पक्षी-चित्रों का प्रकाशन १५५५ ई० में पहले-पहल फ्रांस तथा स्विटजरलैंड में एक समय ही हुआ। पेरिस में पी० बेलोन तथा ज़ूरिच में के० जेसनर ने पक्षी-चित्रों के सर्वप्रथम मुद्रण का श्रेय प्राप्त किया। इटली के बोलोग्ना नगर में भी १५९९—१६०३ में यू० एल्ड्रोवंडी नाम के व्यक्ति ने एक अधिक विस्तृत प्रकाशन इसी

प्रकार का किया। इन सब में सभी ज्ञात पक्षियों के चित्र प्रकाशित किये गये थे। इन ग्रन्थों के चित्र विभिन्न कोटि के हैं। परन्तु वे बड़े भद्दे नमूने के ही हैं।

इन प्रारम्भिक प्रयत्नों के पश्चात् काठ के ठप्पों से ही पक्षियों के चित्र की अन्य पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उनमें कुछ के चित्रों को



श्वेत शीर्ष सुपर्ण
विश्व प्रसिद्ध चित्रकार एल्लन ब्रुक द्वारा चित्रांकन के आधार पर
श्री० एच० चटर्जी द्वारा चित्रित

पक्षियों की सुन्दरता दिखाने के स्थान पर वातावरण का चित्रांकन

करने का ही अधिक प्रयत्न कहा जा सकता है किन्तु कुछ उत्तम पुस्तकें भी निकलीं। काठ के ठप्पों से छपे चित्रों द्वारा चित्रित एक प्रसिद्ध पुस्तक इंगलैंड के पक्षियों के सम्बन्ध में प्रकाशित होकर बहुत प्रसिद्ध हुई जिसका चित्रकार जासेफ वुल्फ (१८२०—९६) नामक चित्रकार था। धातु-ठप्पों या तांबे के ब्लाक से १६२२ ई० में रोम में एक पुस्तक पक्षियों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम छपी थी।

सत्रहवीं-अठारवीं शताब्दी में कला-प्रेमियों को पक्षियों का सदेह रूप ही सुरक्षित रखने के लिए उत्साहित पाया जाता है। परन्तु पक्षियों के चर्म सुरक्षित करना एक कठिन कार्य है। अतएव उन कला-प्रेमियों की पक्षीचर्म-रक्षण वृत्ति का परिणाम संतोष-जनक नहीं हो सका। जब वास्तविक चमड़े को रख सकना विशेष असुविधाजनक सिद्ध हुआ तो कला-प्रेमियों तथा पोषकों ने उनका सुन्दर चित्र ही उतरवा कर संगृहीत करना प्रारम्भ किया। अपने चित्र संग्रहों को सम्पन्न करने के लिए वैज्ञानिक विद्याव्यसनी तथा कलाप्रेमी महानुभावों ने विदेशों का पर्यटन प्रारम्भ किया। ऐसे प्रयत्नों का परिणाम यह निकला कि कितने ही वैज्ञानिकों ने अपनी यात्राओं का विवरण प्रकाशित कराया। उन विवरणों को सचित्र भी करने का उद्योग हुआ। इन विवरणों में पक्षी के चित्र प्रमुख स्थान प्राप्त करते। यह पक्षी-विज्ञान तथा पक्षी-चित्रांकन की उन्नति में बड़ी सहायक बात हुई। एक उल्लेखनीय उदाहरण मार्क कैटेस्वी का "कैरोलिना, फ्लोरिडा तथा बहामा द्वीप का प्राकृतिक इतिहास" है। यह पुस्तक लंदन से सन् १७३१-४३ में प्रकाशित हुई थी। इसमें उत्तरा अमेरिका के पक्षियों के कुछ प्राचीनतम रंगीन चित्र दिये गये थे। एक दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक सन् १७९६-१८०८ में पेरिस से प्रकाशित हुई जिसे फ्रैंकोईलेवेलाँ ने तैयार किया था। इसमें दक्षिणी अफ्रीका तथा कुछ अन्य भूभागों के पक्षियों के रंगीन चित्र दिये

गये थे। इसके पूर्व फ्रांस में पक्षियों के चित्र की. एक भारी पुस्तक प्रकाशित करने का विराट आयोजन बफोन ने किया था। यह थी तो जन्तुओं के चित्र की पुस्तक, परन्तु उसमें अधिकांश पक्षी ही थे। इसमें सभी ज्ञात जातियों का चित्र देने का प्रयत्न किया गया था। फ्रान्स के ८० चित्रकारों तथा सहायकों ने इस विशाल आयोजन में भाग लिया। सन् १७६५ तथा १७८६ के मध्य १००८ चित्र प्रकाशित किये गये थे। बफोन के इस विशाल चित्र ग्रंथ के परिशिष्ट रूप में टेंमित्र तथा लागियर डी चार्ट्रियूज ने १८२०-१८३६ के मध्य ६०० अन्य जातियों के चित्र प्रकाशित किये।

ऐसे विशाल व्ययसाध्य ग्रन्थों को केवल सम्पन्न वर्ग ही क्रय कर सकता था। साधारण वित्त के पाठकों तक वे नहीं पहुँच सकते थे। अतएव बाद के प्रकाशनों में अधिकांश प्रयत्न किसी विशेष भूभाग के पक्षियों के चित्र प्रकाशित करने के ही पाये जाते हैं। उनमें भी उन्हीं के पक्षी चित्रित करने का उद्योग होता जिनमें परों का अद्भुत दर्शनीय रंग होता।

लेवेलों द्वारा तोतों के चित्र की पुस्तक ऐसी ही थी। इंगलैंड में पी० जे० सेलबाई ने १८२१-३४ में स्थानीय पक्षियों के चित्रों का अत्यन्त सुन्दर प्रकाशन किया। इस प्रकाशन में यह विशेषता थी कि पक्षियों में केवल बहुत बड़े को छोड़कर शेष को उनके पूरे आकार में ही मुद्रित किया गया था। इन चित्रों का प्रकाशन लिजार्स नामक प्रकाशक ने किया था। उसके बड़े आकार के यथार्थ रूप में छपे चित्रों को देखकर फ्रान्स के एक अमेरिका प्रवासी प्रसिद्ध चित्रकार जे० जे० आडुबों ने अमेरिका के पक्षियों का सुन्दर चित्र तैयार कर उसे प्रकाशित करने के लिए दिया। पक्षियों का चित्र बड़े रूप में यथार्थ आकार में छाप सकने के लिए पृथक् छापा जाने लगा तथा उनका वर्णन पृथक् पुस्तक रूप में छपना प्रारम्भ हुआ। परंतु

इतने भारी कार्य के लिए रंग भरने वालों की कमी के कारण कार्य रुक गया। कुछ समय बाद हैविल नाम के प्रकाशक ने ही अधिकांश चित्रों को छापा।

आडुबोन के चित्रांकन की यह विशेषता थी कि वह पक्षियों को उनकी यथार्थ स्थिति तथा वातावरण में प्रदर्शित करना चाहता था। जिस रूप में पक्षी अपना स्वाभाविक जीवन व्यतीत करता, उसके प्रदर्शन के लिए वैसे वृक्षों की डाल, पत्ती, फल, फूल आदि की पृष्ठभूमि रहती। कुछ पक्षी आकाश में अपना शिकार पकड़ते दिखाये गये होते। कुछ डालों, पत्तियों या भूमि पर घास में चारा चुगते दिखाये जाते। कोई अपने घोंसले में बैठा होता तो कोई कहीं पानी में तैरता, उथले पानी में चलता या तट या भूमि पर कूदता-फाँदता रक्खा जाता। इसमें एक भारी दोष यह कहा जाता है कि जिन रूपोंमें किसी पक्षी को अपने अङ्क रक्खे चित्रित किया जाता उस रूप में पक्षी अधिक समय तक पड़ा नहीं दिखाई पड़ सकता। अतएव जिस रूप में पक्षी स्वभावतया अधिक समय तक पड़ा हमें प्रदर्शित न हो सकता हो, उस स्थिति का चित्रण ठीक प्राकृतिक नहीं कहा जा सकता। फिर भी इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन ने पक्षियों के चित्रण में युगान्तर उपस्थित करने में सफलता प्राप्त की। इस पुस्तक में अमेरिका के पक्षियों के चित्र सन् १८२८ से १८३८ तक थोड़ी-थोड़ी संख्या में प्रकाशित होते रहे तथा उनके वर्णन की पुस्तक पाँच जिल्दों में सन् १८३१ से १८३९ तक प्रकाशित हुई।

आडुबोन का चित्रग्रंथ प्रकाशित होते रहने के समय एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रकाशन जान गोल्ड ने किया जिसमें पक्षियों के चित्र रंगीन रूप में निकलने लगे। इस प्रकाशन के लिए पक्षियों के अधिकांश चित्र संग्रहालयों में सुरक्षित खालों को देखकर ही चित्रित किये गये। चित्रकार पक्षियों का चित्र तो उतारता, परन्तु उसे

स्वयं उन पक्षियों को जीवित रूप में अवलोकन का कभी अवसर नहीं मिला था।

अमेरिका के पक्षियों के अतिरिक्त एशिया के पक्षियों का चित्र भी उसने प्रकाशित कराया। उसके चित्रग्रंथों में १८३२ में हिमालय के पक्षी १८५०-८३ में 'एशिया के पक्षी' तथा १८७५-८८ में 'न्यू गिनी के पक्षी' भी प्रकाशित हुए। जब उसने आस्ट्रेलिया के पक्षियों का चित्रग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन किया तो उसकी इच्छा आस्ट्रेलिया जाकर स्वयं पक्षियों को जीवित रूप में देखकर चित्रित करने की हुई। अपनी पत्नी के साथ वह आस्ट्रेलिया गया तथा १८३८ से १८४० तक दो वर्ष वहाँ व्यतीत किया। अतएव आस्ट्रेलिया के पक्षियों के चित्र की पुस्तक (१८४०-४८) निस्सन्देह ही उसके अनेक ग्रन्थों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। १८६२-७३ के मध्य उसने इंगलैंड के भी पक्षियों के चित्र की पुस्तक प्रस्तुत की, परन्तु उसके लिए उसने सहायकों से भी काम लिया।

जासेफ वुल्फ ने पहले लकड़ी के ठप्पों द्वारा चित्र प्रकाशित करवाया था किन्तु नए मुद्रण-कौशल द्वारा चित्र छपाने में भी उसको यश प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। वह जर्मनी के एक किसान का पुत्र था। प्रारम्भ में अपना जीवन उसने चिड़ियों का शिकार करने तथा चिड़ियों और पक्षियों को नेत्र गड़ाकर देखते रहने में व्यतीत किया जिससे वह कुछ चित्रण की सामग्री प्राप्त कर सके। उसने यह अनुभव किया कि पक्षियों का सजीव चित्र उतार सकने के लिए उनकी आन्तरिक शरीर-रचना का ज्ञान होना आवश्यक है। १६ वर्ष की आयु में ही उसने अपने पिता से आग्रह कर एक चित्रमुद्रक के यहाँ काम सीखना प्रारम्भ किया। काम सीख चुकने पर वह एक वर्ष के लिए घर लौटा। वह अपना समय पक्षियों को चित्रित करने में व्यतीत करता रहा। उन चित्रों

को लेकर वह फ्रैंकफोर्ट आन मेन नगर में पहुँचा। वहाँ उसे अपने चित्र डा० रुप्पेल को दिखाने का अवसर मिला। उन्होंने उसकी चित्रांकन-कुशलता को प्रशंसित किया तथा अपनी एक पुस्तक के लिए चित्र तैयार करने के लिए आमंत्रित किया। संयोग की बात थी कि रुप्पेल का परिचय डार्मस्टैट के संग्रहालयाध्यक्ष डा० कौप से था। अतएव जासेफ वुल्फ अपने तैयार किये पक्षियों के चित्रों को लेकर डा० रुप्पेल के परिचय-पत्र के साथ डार्मस्टैट जा पहुँचा। वहाँ उसकी चित्रकला की उत्कृष्टता स्वीकृत की गई। डा० कौप ने उसे प्रोफेसर श्लेगेल तथा वुलवरहोर्स्ट से परिचित कराया जिनकी पक्षी विज्ञान की एक पुस्तक तैयार हो रही थी। वुल्फ को १८४४ से १८५३ तक उसके लिए पक्षियों के चित्र बनाने का अवसर प्राप्त हुआ।

अपनी चित्रांकन-कुशलता तथा अनुभव के कारण उसे अनेक कार्य बराबर मिलते रहे। अपनी प्रसिद्धि कर उसने इंगलैंड जाना निश्चय किया। उसे इंगलैंड जाने का आमंत्रण पहले से ही मिल रहा था जिसे उसने पहले अस्वीकार कर दिया था। इंगलैंड जाने पर वह जन्तुओं के चित्र अंकित करने में प्रमुख चित्रकार प्रसिद्ध हुआ। अतएव जन्तुओं तथा पक्षियों के चित्र बनाने का कार्य उसे यथेष्ट मिलने लगा। जन्तु विज्ञान के पत्रों तथा पुस्तकों के लिए उसके चित्रों की सदा ही पूछ होती है। उसके चित्र इतने सजीव होते कि उसे उस समय तक के सभी पक्षी-चित्रकारों में सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। उसकी पक्षियों के सजीव चित्रण को आज भी अप्रतिम कहा जा सकता है।

जासेफ वुल्फ के समकक्ष या उसके निकटतम पहुँच सकने वाले पक्षी-चित्रकारों में आर्चिबाल्ड थारबर्न, जे० जी० मिलेइज, लुई अगासिजफ्यूरेट्स, एल्लन ब्रुक्स तथा ब्रुनो लिलजेफोस के नाम

लिये जा सकते हैं। जीवित चित्रकारों की गिनती इनमें नहीं की गई है।

आर्चिबाल्ड थोरबर्न (१८६०-१९३५) राबर्ट थोरबर्न नामक एक प्रसिद्ध चित्रकार के पुत्र थे। इन्होंने फूलों का चित्र बनाने से चित्र-कला का कार्य प्रारम्भ किया। इनके चित्रित पक्षियों के चित्रों में पृष्ठभूमि में फूलों का ठीक-ठीक रूप में जैसा स्वाभाविक चित्रण है, वह दर्शनीय है। लार्ड लिलफोर्ड ने अपनी पक्षियों की पुस्तक के लिए इस चित्रकार को नियुक्त किया। थोरबर्न ने लिलफोर्ड के जन्तु-भवन का बार-बार अवलोकन कर पक्षियों का भव्य चित्रण किया। एक दोष यह कहा जा सकता है कि इन चित्रों में पूर्ण परों का चित्रण उनके अत्यन्त चमकीले रंगों में किया गया है जिससे उन पक्षियों का रूप अतिरंजित हो गया है।

जान ग्विले (जे० जी०) मिलेइन (१८६५-१९२१) ग्रन्थकार थे। बालकपन में शिकार खेलने तथा प्रकृति पर्यवेक्षण की वृत्ति उनमें थी। अनेक देशों में भ्रमण कर उन्होंने दृश्यों तथा जन्तुओं का स्वयं चित्र अंकित कर वर्णन प्रकाशित किया। उनकी मुख्य कृति इंगलैंड के शिकार के पक्षियों तथा बत्तखों के सम्बन्ध की है। इनकी एक प्रसिद्ध पक्षी-पुस्तक में चित्र बनाने का कार्य आर्चिबाल्ड थोरबर्न ने किया था, किन्तु मिलेइन ने उसके बाह्य सौन्दर्य तथा अन्य क्रियाशीलता में इतना स्वयं कार्य किया है कि उनका एक अत्यन्त प्रवीण चित्रकार से न्यून स्थान नहीं दिया जा सकता।

लुई अगासिज फ्युरेट्स (१८७४—१९२७) अमेरिका के निवासी थे। उन्होंने अपना कोई गुरु नहीं किया। निरन्तर तीस वर्षों तक वे चित्र-निर्माण में लगे रहे। १९१० में 'न्यूयार्क के पक्षी' तथा १९२५ में 'मेसेचुसेट के पक्षी' के लिए बहुसंख्यक पक्षियों का

चित्रण उनका प्रसिद्ध कार्य है। वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, सूचना-पत्रकों आदि में पक्षियों के चित्रण के लिए उनकी बराबर पूछ रहती थी। यह ठीक है कि कितने ही चित्रकार पक्षियों के चित्र प्रस्तुत करने में भी अमेरिका सरीखे विस्तृत देश में बहुसंख्यक उत्पन्न हुए होंगे परन्तु लुई अगासिज़ ने इस क्षेत्र में अद्भुत कार्य कर जो मार्ग-प्रदर्शन किया वह चिरस्मरणीय है। पक्षियों के सौंदर्य-परिदर्शन को एकरंगे, बहुरंगे रूपों में चित्रित करने, उनके सौष्ठव की समय-समय पर चर्चा तथा प्रचार करने, उनके सजीव चित्रण को उच्च स्तर प्रदान करने में भारी योगदान किया। एक ही पक्षी को अनेक बार चित्रित कर चुकने पर पुनः नये चित्र उतारकर उसमें नई जान-सी डाल देने की क्षमता उनमें प्रचुर थी। इस विषय के प्रति उनको प्रगाढ़ प्रेम तथा असीम उत्साह सदा प्रस्फुटित होते रहने का अवसर ढूँढ़ता रहता था। पश्चिमी गोलार्द्ध के पक्षियों के संबंध में उनका ज्ञान अद्वितीय था। अपने विषय-ज्ञान के लिए उन्होंने अलास्का, कनाडा, मेक्सिको तथा दक्षिणी अमेरिका की यात्राओं में भाग लिया था। अन्त में वे अबीसीनिया भी गये थे। संयुक्तराष्ट्र के अधिकांश को उन्होंने रौंद डाला था। अबीसीनिया यात्रा में पर्यवेक्षण कर उन्होंने वहाँ के पक्षियों का जो चित्रण किया वह उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हो सका था। ये चित्र उनकी सर्वोत्कृष्ट चित्रकला के उदाहरण हैं।

अल्लन ब्रुक (१८६९—१९४६) का जन्म इटावा में हुआ था। किन्तु १९९५ में वे ब्रिटिश कोलंबिया में स्थायी रूप से बस गये। इन्होंने अपना जीवन संग्रहालयों के लिए पशु-पक्षी या अण्डों के संग्रह से प्रारम्भ किया। कोमल ऊन के लिए शीत ऋतु में जंतुओं को फँसाने का कार्य भी कर निर्वाह करते रहे। किन्तु १९०४ के बाद कलाकार बन गये। डासन तथा बावेल्स का 'वाशिंगटन के पक्षी'

नामक पुस्तक के लिए १६०६ में चित्र अंकित करना प्रारम्भ किया। १६०६ में उन चित्रों के साथ पुस्तक प्रकाशित हुई।

अल्लन ब्रुक ने कोई गुरु नहीं किया। प्रकृति पर्यवेक्षण से चित्रकला का अभ्यास प्रारम्भ किया। देश-विदेश घूमते भी रहे। १६२३ में डासन की एक पुस्तक 'केलिफोर्निया के पक्षी' के लिए चित्र पूरा किया जिसे १६१४ में ही उन्होंने बनाना प्रारम्भ किया था। अमेरिका के सारे पक्षियों के सम्बन्ध में भी उनके चित्र मासिकपत्र में १६३४ के बाद छपे।

ब्रूनो लिल जेफोसे का जन्म १८६० में स्वेडेन में हुआ था। वे बालकपन से प्रकृति पर्यवेक्षण के प्रेमी थे। शिकार का भी भारी शौक रखते थे। वयस्क होने पर वे पक्षियों को भगाये बिना, केवल पर्यवेक्षण की वस्तु अनुभव करने लगे। उन्होंने एक जन्तुओं के चित्रकार से कुछ सीखकर पहले कुछ जंगली जानवरों के चित्र अंकित किये परन्तु बाद में तीस वर्ष की आयु के पश्चात् स्टाकहोल्म में स्थायी रूप से बस गये। वहाँ रह कर इन्होंने अनेक समुद्री पक्षियों का चित्र उड़ान की स्थिति में इतना सुन्दर प्रदर्शित किया कि देखते ही बनता। प्राय: सभी चित्रों में पृष्ठभूमि और भी सुन्दर होती। उसमें पक्षी के रहने के स्वाभाविक वातावरण का मनोहर चित्रण होता। उनके चित्रित जन्तु या पक्षी गतिशील अवस्था में प्रदर्शित पाये जाते हैं।



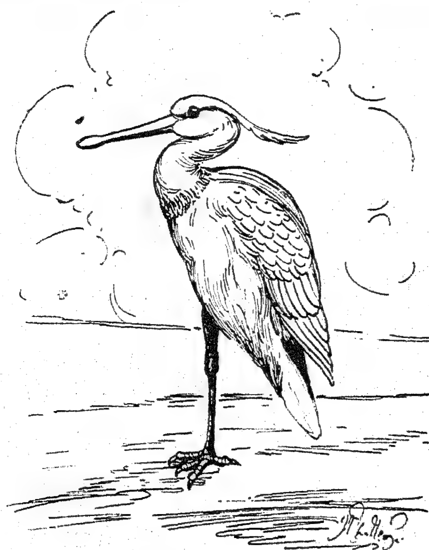
वकगण

शिखी दर्वीमुख (चम्मचमुखी बगला)

स्था० नाम—चमचा बाज (हि०), घिंटा (वंग)

चम्मचमुखी बगला का दर्वीमुख नाम रखना इसके रूप के ही अनुकूल है। दर्वी शब्द का अर्थ चम्मच है, परन्तु सिर पर शिखा होने से इसे शिखी या चोटी वाला बगला कहना भी ठीक है। इसका आकार ३ फीट लम्बा होता है किन्तु मुख्य शरीर की लम्बाई इसकी अर्द्धांश होती है। लम्बे पैर इसका आकार बहुत लम्बा कर देते हैं। पूर्ण शरीर तो इतना श्वेत होता है कि उज्ज्वलता की उपमा के लिए हम बगले का नाम लिया जाना उचित ही समझते हैं। महावरा ही बन गया है कि अमुक वस्तु तो इतनी उजली है मानों बगले की पाँख हो। किन्तु शिखी दर्वीमुख का शरीर श्वेत होते हुए भी पैर और चंचु काले होते हैं। चोंच का चम्मच की ही तरह विशेष लंबा आकार विस्मृत नहीं हो सकता। इस बगले का ऊपरी वक्षस्थल तथा सिर का ऊर्ध्वभाग शिशु जननकाल में वयस्कों में पीले रङ्ग का हो जाता है तथा उसी समय चोटी (शिखा) भी निकली होती है। अतएव इसे केवल कुछ विशेष काल तक ही परों की शिखा धारण करते पाया जाता है। अल्पायु दर्वीमुख के पंख छोरों पर काले होते हैं। उड़ते समय इसकी गर्दन फैली हुई होती है। उथले जल में अपनी चोंच पेंदे तक ले जाकर यह अपना आहार ढूँढ़ता रहता है। इसका आहार मछली, उभय-

चर तथा उनके बच्चे और अंडे, कीड़े-मकोड़े, केकड़े वर्ग के जन्तु,



शिखी दर्वीमुख

कोशास्थ जन्तु, केचुए तथा कुछ वानस्पतिक पदार्थ हैं। यह झुंड बनाकर रहता है किंतु स्वर यंत्र का इसमें अभाव ही होता है, अतएव शिशु उत्पादन के स्थलों पर अपने चोंचों को परस्पर रगड़ कर ही शब्द करता है।

यह पक्षी दलदल, नदियों के मुहाने तथा समुद्र के उथले जल का रहने वाला है। पूर्वी गोलार्द्ध का ही पक्षी इसे कह सकते हैं। पश्चिमी यूरोप में केवल दक्षिणी स्पेन, हॉलैंड, डेनमार्क आदि में ही अपने अंडे देता है, किन्तु इसके जन्म के अधिक उपयुक्त क्षेत्र यूरोप के मध्यवर्ती देश आस्ट्रेलिया से लेकर बालकन प्रायःद्वीप होते हुए

एशिया के आरपार जापान तक की पट्टी रूप है जो उत्तर में काला-सागर, अजोर सागर, कैस्पियन सागर, अरल सागर, बालकश झील, बैकाल झील और आमूर नदी तक, दक्षिण में फारमोसा, चीन, भारत, फारस की खाड़ी और सोमालीलैंड तक, पश्चिम में श्वेत नील नदी, मिस्र, सीरिया तथा एड्रियाटिक तक विस्तृत है। भारत में मैदानी भागों में यह सर्वत्र पाया जाता है। जलाशयों के निकट वृक्षों पर झुण्ड में या कभी अन्य जल पक्षियों के बीच घोंसला बनाता है।

श्वेत आटी

स्था० नाम—मुंडा, सफेद बाज, दीधर (हि०) सबूत बाज,
दो चोरा (वंग)

बड़े पालतू मुर्गे के बराबर ही श्वेत आटी का आकार होता है। पत्राटी का भी इसी के बराबर आकार होता है। रूप, गुण, स्वभाव आदि में श्वेत आटी को पत्राटी के समान समझना चाहिये। इसकी लम्बी चोंच तलवार की तरह नीचे की ओर कुछ मुड़ी होती है। सिर और लम्बोतरी चोंच का रङ्ग काला होता है, परन्तु पैर को छोड़कर शेष सब शरीर श्वेत वर्ण ही होता है। कंधों के निकट का कुछ भाग सलेटी भूरा और मुख्य डैनों के पर छोरों पर भूरे-से होते हैं। गर्दन के मूल भागों में श्वेत आटी में भी जनन ऋतु में परों की चोटी श्वेत रंग की निकल आती है तथा ऊपरी वक्षस्थल पर भी पर निकल आते हैं। अन्यथा वयस्क श्वेत आटी की गर्दन और सिर नग्न परहीन होता है। परंतु अल्पवय श्वेत आटी की गर्दन तथा सिर के कुछ भाग में पर निकले होते हैं। नर और मादा दोनों ही श्वेत आटी का रूप समान होता है। इसे दलों या बड़े झुंड रूप में उथले जलीय भागों में पाया जाता है।



श्वेत आटी भारत, सीलोन, बर्मा के मैदानों तथा पूर्व में चीन तथा [illegible] जापान तक पाया जाता है। यह हमारे देश में सदा



श्वेत आटी

पाया जाने वाला पक्षी है। परन्तु स्थानीय रूप में कुछ स्थान-परिवर्तन करता पाया जाता है।

जल पक्षियों में श्वेत आटी को झीलों, तालाबों तथा नदियों के निकट की भूमि या उथले जलीय भागों, जलमग्न मैदानों या धान के

खेतों में झुण्ड के झुण्ड रूप में देखा जा सकता है। इस के झुण्ड में साथ ही अन्य बक तथा उथले जल में जीवन निर्वाह करने वाले अन्य जल पक्षी भी होते हैं। पानी थोड़ा ही किन्तु अधिक समय तक रहने से भूमि बिल्कुल पंक बनकर अनेक प्रकार के जल जंतुओं से भरीपुरी होती है। उनमें घोंघे, शंबुक आदि कोशस्थ जंतु, केकड़े सरीखे कड़ी खोलवाले जन्तु, कीड़े-मकोड़े, केंचुएँ और मेढक आदि इन पक्षियों की चोंच पानी में प्रविष्ट कर पंक तक पहुँचने पर उनके शिकार बन जाते हैं। प्रकृति ने इन पक्षियों के आहार का यही क्षेत्र तथा विधान रक्खा है।

ये जल पक्षी अपना आहार भूमि पर ही पाने के कारण बराबर भूतल पर ही देखे जाते हैं, किंतु तंग किये जाने या भगाये जाने पर ये उड़कर वृक्षों पर भी चले जाते हैं। सारस, श्वेत आटी, बक पक्षियों को यथार्थ स्वरयन्त्रहीन ही पाया जाता है। अतएव उन्हें शान्त ही रहते पाया जाता है।

जनन ऋतु में श्वेत आटी को अपने जोड़े को आकर्षित करने के लिए कुछ रँभाने-सा शब्द करने का विश्वास किया जाता है। बहुत से पक्षियों के झुण्ड में रहने पर इस तरह का शब्द सामूहिक रूप से उत्पन्न होकर किसी दृष्टि में एकत्रित बहुसंख्यक पुरुषों की ध्वनि-सा जान पड़ता है।

श्वेत आटी लम्बी चोंच आगे की ओर तथा पैर पीछे की ओर सीधे फैलाकर दृढ़तापूर्वक एक सीध में उड़ता जाता है। अपने पंख बार-बार बलपूर्वक फटफटा कर वह थोड़ा-थोड़ा आगे की ओर उड़ान भरता जाता है। इनके दल को एक बिंदु से दो भुजाएँ निकली होने या त्रिभुज की दो भुजाओं के रूप में पंक्ति बनाये उड़ते पाया जाता है, इसे जल खंडों के निकट सदा ही निवास करते तो पाया

जाता है। परन्तु सूखा पड़ जाने पर जलविप्लव उपस्थित होने पर स्थान परिवर्तन कर अन्यत्र जाकर भी निवास करना पड़ जाता है।

श्वेत आटी के घोंसले वृत्तों में निकट-निकट झुण्ड रूप में ही बनते हैं। उन्हीं के बीच कहीं सारस का घोंसला होता है तो कहीं बक अपने घोंसले में विराजमान होते हैं। इन जल पक्षियों में एक दूसरे के निकट रहने में कोई कलह या विरोध भावना नहीं पायी जाती है। कदाचित् सार्वभौम वृत्ति में ही विश्वास करने वाले हों। या यह भी हो सकता है कि मनुष्यों को अपनी सामूहिक जीवन वृत्ति तथा विश्व बन्धुत्व के प्रयत्न में असफल होते देखकर इन जल पक्षियों ने ही ऐसा आदर्श वृत्तों पर ही बचा-खुचा रखने का प्रयत्न किया हो।

कृष्ण आटी

स्था० नाम—बाज, काला बाज, करांकुल

कृष्ण आटी का आकार बड़े पालतू मुर्ग के ही बराबर होता है, किंतु श्वेत आटी से कुछ अपेक्षाकृत छोटा होता है। रंग में श्वेत आटी से यथेष्ट भिन्न होने पर भी रूप उसी के समान होता है। लंबी तथा तलवार के समान नीचे की ओर कुछ मुड़ी चोंच इसकी भी विशेषता है जो पानी के नीचे पंक तक पहुँच कर आहार खोजने के लिए ही प्रकृति की देन है। यह कृष्ण वर्ण का पक्षी है, इसी कारण इसका नाम कृष्ण आटी पड़ा है। इसके पैर मटमैले लाल, ईंटे के रंग के होते हैं। गर्दन के समीप एक श्वेत धब्बा होता है। सिर का रंग काला किंतु ऊपरी शीर्ष पर लाल होता है। सिर पर परों का अभाव होता है। यह पक्षी उथले जल भागों में नहीं रहता। बल्कि मैदानी भागों में निवास करता है। नर और मादा के रूप समान ही होते हैं। पत्राटी नाम का पक्षी रंग-रूप में कृष्ण आटी-

सा ही जान पड़ता है, परन्तु अपेक्षाकृत क्षुद्राकार होता है। उसकी चोंच भी कुछ दुर्बल ही होती है। सिर पर पर होना उसकी विशेष पहचान है। उसके शरीर का रंग कालापन लिये हुए नीला लाल होता है। पत्राटी भारत में सदा रहने वाला पक्षी तो है, परन्तु शीत ऋतु में उसके बहुतेरे बन्धु उत्तर-पश्चिम सीमा से यहाँ आ पहुँचते हैं और उसकी संख्या वृद्धि कर देते हैं। श्वेत आटी की तरह पत्राटी भी उथले जल-खंडों का ही पक्षी है।

कृष्ण आटी का निवास क्षेत्र पाकिस्तान में पश्चिमी पंजाब, सिंध, और भारत में पूर्वी पंजाब, कच्छ, गुजरात, उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के मैदान हैं। मैसूर के दक्षिण या सीलोन में यह नहीं पाया जाता। पच्छिमी घाट में भी इसका अभाव है। परन्तु आसाम, बर्मा के शुष्क भूभाग, थाईलैंड से लेकर कोचीन चीन तक थोड़ी संख्या में पाया जा सकता है।

कृष्ण आटी को खुले मैदानों तथा खेतों के निकट ३-४ या ८-१० तक के झुंड में पाया जाता है। यह झील या नदियों के निकट भी पाया जाता है परन्तु जल-खंड के ही निकट रहने का कोई निश्चित नियम नहीं है। यह उथले जल से दूर ऊँची तथा सूखी भूमि में रहने का प्रेमी है। कीड़े-मकोड़े और अनाज के दाने खाता है, किंतु कभी सरीसृप भी खा सकता है।

तनुश्री कृष्ण आटी

आकार :—यह कृष्ण आटी साधारण भारतीय कृष्ण आटी से कुछ बड़ा होता है। पंख की लम्बाई—१७ इंच, पूँछ—८$\frac{१}{४}$ इंच से कुछ अधिक, गुल्फ—लगभग ४ इंच, चोंच—पौने चार इंच से कुछ कम।

तनुश्री कृष्ण आटी बर्मा के तनासरिम, पेगू तथा पूर्व की ओर

हिन्द चीन तक पाया जाता है। तनासिरम में इसके मिलने से तनुश्री उपजाति नाम रख दिया गया। इसका रंग-रूप बिल्कुल भारतीय कृष्ण आटी-सा होता है, परन्तु थोड़ा अन्तर यह होता है कि भारतीय कृष्ण आटी के शीर्ष तथा पश्च शीर्ष पर गुमड़ी (बढ़ा हुआ मांस खंड) विशेष बढ़ी होती है और उसका रंग लाल होता है, परन्तु तनुश्री कृष्ण आटी में वह नहीं होती है, उसका रंग भी लाल नहीं होता। यह ध्यान में रखने की बात है कि भारतीय कृष्ण आटी के शिशु में भी सिर पर गुमड़ी का अभाव ही होता है और उसकी जगह शीर्ष तथा कंठ में धूमिल भूरे रंग के पर निकले होते हैं।

यह पक्षी फरवरी-मार्च में जनन करता है। यह एक बार में दो अंडे देता है। अंडों के रंग भारतीय कृष्ण आटी के अंडे के समान ही होते हैं। इसका घोंसला वृक्ष के कोटर में भूमि से १५ फुट से लेकर ३० फुट की ऊँचाई तक होता है।

तनुश्री कृष्ण आटी दलदली भागों में अधिक पाया जाता है, परन्तु भारतीय कृष्ण आटी खुले सूखे भागों में ही रहता है जहाँ खेती होती हो। उथले पानी या दलदली भागों में वह कभी-कभी ही मेढक का शिकार करने जाता है। वह उथले पानी में शायद ही कभी चलता है। तनुश्री कृष्ण आटी का मुख्य आहार टिड्डी-टिड्डा तथा बीज है। यह एकाकी वृत्ति का पक्षी है। केवल जोड़े रूप में पाया जा सकता है। यह न तो उपनिवेश रूप में जनन करता है और न बगुलों या अन्य पक्षियों के साथ घोंसले बनाता है। चारा चुगने में भी उनके साथ नहीं जाता।

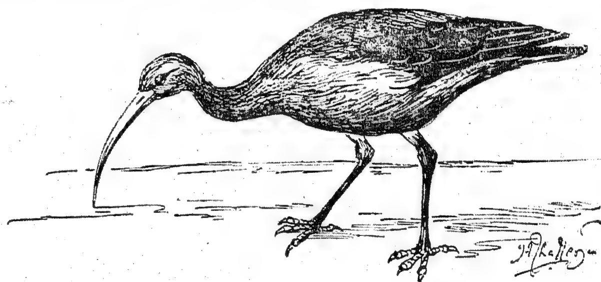
पत्राटी

स्था० नाम—कवरी, कवर, छोटा बाज हि०। काला कचियारतोरा (वंग)

पत्र के रंग का आभास पंख में होने से ही कदाचित् इसका

नाम पत्राटी पड़ा। दूर से देखने पर इस पत्ती का रंग काला जान पड़ता है, परन्तु यथार्थ में भूरा मिश्रित नीलारुण रंग होता है। पैर और चोंच मटमैली होती है। इसकी चोंच विशेष लम्बी तथा नीचे की ओर तलवार की तरह झुकी होती है। शरीर की कुल लम्बाई डेढ़ फीट के लगभग होती है परन्तु मुख्य शरीर आधा ही लम्बा होता है। उड़ान के समय पत्राटी अपनी गर्दन और पैर फैलाये रखता है। लम्बी चोंच का उपयोग यही हो सकता है कि वह उथले पानी में पेंदे तक उसे पहुँचा कर कीड़े-मकोड़े, कोशस्थ जन्तु, केंकड़े, जोंक, केचुये, मेढक और मछली आदि पकड़ कर उदरस्थ कर सके। यह मंडली में रहना पसन्द करने वाला पत्ती है। इसी के आकार से मिलते-जुलते श्वेत आटी और कृष्ण आटी पत्ती होते हैं।

पत्राटी को लगातार लम्बे त्तेत्रों में जन्म धारण करते नहीं पाया जाता। यह स्फुट त्तेत्रों में अंडे देता है। उन स्थानों के कुछ विशेष



पत्राटी

स्थलों में इसके जन्म लेने के प्रमाण मिलते हैं। जन्म-धारण त्तेत्र निम्न हैं:—मोरक्को, दत्तिणी स्पेन, दत्तिणी फ्रांस, उत्तरी इटली, आस्ट्रेलिया, हंगरी, यूगोस्लाविया, रूमानिया, बलगारिया, रूस

(वोल्गा तथा काकेशश क्षेत्र), एशिया माइनर, सीरिया, मिस्र, ईरान, अफगानिस्तान, भारत, सीलोन, बर्मा, मडागास्कर, रूस के ट्रांसकास्पियन, तुर्किस्तान आदि के कुछ स्थलों में एक उपजाति पाई जाती है, दूसरी उपजाति का जनन-क्षेत्र फिलीपाइन, सिलेबीज, जावा तथा पूर्वी द्वीप समूह होकर आस्ट्रेलिया तक है। पहली उपजाति के समान ही एक उपजाति पश्चिमी गोलार्द्ध में मेक्सिको की खाड़ी, फ्लोरिडा, क्यूबा आदि में होती है। एक श्वेत पत्राटी भी कदाचित् इसी जाति का है जो अमेरिका में विस्तृत क्षेत्र में पेरू, ब्राजील, आर्जेंटाइना तथा चाइल आदि तक पाया जाता है।

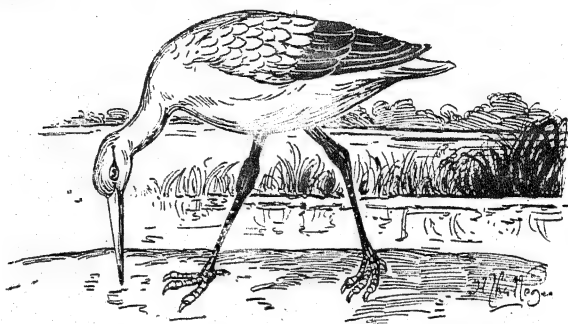
यूरोप के पत्राटी प्रवास करने के लिए दक्षिणी अफ्रीका तक जाते हैं।

श्वेत बक (राज बक)

स्था० नाम—लगलग, हाजी लगलग, उजली, ढाक, घिबुर (हि०)

श्वेत बक विशालकाय पक्षी है। इसकी कुल लम्बाई तो ४० इंच होती है, परन्तु मुख्य शरीर २० इंच ही लम्बा होता है। अधिकांश पंख तथा पृष्ठाग्र का कुछ भाग काला होता है, अन्यथा शेष सब शरीर श्वेत ही होता है, इसी कारण इसे श्वेत या श्वेतांग बक कह सकते हैं। पैर लम्बे और रक्तवर्ण होते हैं। चोंच भी लम्बी, गावदुम तथा रक्तवर्ण होती है। यह अपनी गर्दन तथा पैर फैलाये हुए बड़ी भव्यता से उड़ान करता है किंतु आहार की खोज में पंकीय भूमि या छिछले जल में भी चलता है। मेढक इसका मुख्य आहार होता है। किंतु अन्य उभयचर, सरीसृप, मछली आदि का भी आहार करता है। कीड़े-मकोड़े, कुतर कर खाने वाले जन्तु, पक्षियों के शिशु तथा अण्डे, टिड्डी, कोशस्थ जन्तु, केकड़े और केचुये भी छूटने नहीं पाते। इसके नर और मादा का रूप समान होता है,

परन्तु मादा कुछ छोटी होती है। यह एकाकी या मंडली में पाया जाता है।



श्वेत बक

यूरोप और एशिया के खुले कृषि-क्षेत्रों तथा पानी भरे उथले स्थानों में यह पाया जाता है। इसकी चार उप-जातियाँ निम्न क्षेत्रों में जन्म लेती पायी जाती हैं। (१) पाश्चात्य उपजाति (क)—उत्तर में दक्षिणी स्वेडन और दक्षिण पूर्व बाल्टिक तक; पूर्व में नीपर की घाटी, काकेशश तथा ईरान तक; दक्षिण में ईराक, सीरिया, एशिया माइनर, बलगेरिया, यूनान, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया तथा स्विटजलैंड तक; और पश्चिम में जर्मनी, हालैंड तथा डेनमार्क तक। (२) पाश्चात्य उपजाति (ख)—मध्य और दक्षिण पश्चिम स्पेन दक्षिणी पुर्तगाल तथा उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका। (३) मध्य एशियाई उपजाति—तुर्किस्तान तथा उसके समीप के स्थान। (४) पूर्वी एशियाई उपजाति—मंचूरिया, आमूर नदी कोरिया तथा दक्षिणी जापान।

भारत में पहली पाश्चात्य उपजाति ही अधिकांशत: पायी जाती है जो केवल शीत ऋतु में प्रवास करने आती है। किंतु कृष्ण वर्ण

के चोंचों वाली पूर्वी एशियाई प्रजाति आसाम में शीत ऋतु में प्रवास करने आती है। इन पक्षियों में केवल उत्तर भारत में ही प्रवासी पाया जाता है। दक्षिण भारत श्वेत बकों का दर्शन नहीं कर पाता। इनका दल सितम्बर में भारत आना प्रारम्भ करता है और अप्रैल के प्रारम्भ तक वापस चला जाता है। मध्य यूरोप के जर्मनी देश में उत्पन्न श्वेत बकों के भारत में प्रवास करने आने का प्रमाण मुद्रिका-बन्धन विधि से प्राप्त हो सका है। इसका अथ यह है कि ४००० मील दूर ये प्रवास करने आते हैं।

प्राच्य राज बक

आकार :—पंख की लम्बाई २५ इंच से २६¾ इञ्च तक, चोंच—पौने चार से पौने पाँच इंच तक।

प्राच्य राज बक या श्वेत बक साधारण राज बक (श्वेत बक) से कुछ आकार में बड़ा होता है। इन दोनों का सिर, गर्दन तथा पीठ का रंग श्वेत होता है, परन्तु साधारण राज बक की चोंच लाल होती है और प्राच्य राज बक की चोंच काली होती है। दोनों में केवल यही अन्तर होता है।

प्राचीन राज बक का प्रसार क्षेत्र पूर्वी एशिया में उस्सुरी, आमूर नदी से लेकर जापान तथा कोरिया तक है। यह बर्मा, मनिपुर तथा आसाम में प्रवास करने आता है।

प्राच्य राज बक ऊँचे वृक्षों या कभी-कभी चट्टानों पर अंडे देता है। यह प्रवास से लौट कर कदाचित् अपने एक ही पुराने स्थान पर प्रति वर्ष लौट जाता है। यह साधारण राज बक के समान निडर तथा मनुष्य के निकट दिखाई पड़ने वाला नहीं होता। परन्तु कहा जाता है कि उत्तरी चीन के जन्म स्थान में यह ग्रामों के निकट

रहता है। वहाँ गाँव के रास्ते में चलता या मुँडेरियों या छतों पर चुपचाप एक पैर पर खड़ा पाया जाता है।

कृष्ण महाबक

स्था० नाम—सुरमल (हिन्दी)

आकार :—पंख—२१ इंच से २४ इंच तक, पूँछ—७½ से ९½ इंच तक, गुल्फ—७ या ८ इंच, चोंच ६½ से ७½ इंच तक।

कृष्ण महाबक का पिछला वक्षस्थल, उदर, पार्श्व तथा निचले पुच्छआच्छादक का रंग श्वेत होता है। शेष शरीर अन्य अनेक रंगों का चमकीला होता है। ऊपरी भाग नीलारुण, गहरे नीले तथा हरे रंग के होते हैं। गर्दन चमकीली हरी होती है। पीठ नीलारुण तथा गहरा नीला होता है। वक्षस्थल हरा तथा नीलारुण मिश्रित होता है। चोंच लाल किन्तु छोर पर धूमिल होती है, पैर तथा पंजे मूंगे के समान लाल होते हैं।

राज बक तथा कृष्ण महाबकों में यही विशेष भेद होता है कि राज बकों में भाल, शीर्ष तथा कपोल पर पतत्र (पर) उगे होते हैं तथा सिर, गर्दन तथा पीठ का रंग श्वेत होता है। किंतु कृष्ण महाबकों के सिर, गर्दन तथा पीठ का रंग काला या गहरा भूरा होता है और शीर्ष पर पतत्र होते हैं, परन्तु भाल और कपोल नग्न होते हैं।

कृष्ण महाबक का जनन-क्षेत्र जर्मनी, आस्ट्रिया तथा पूर्वी यूरोप से उत्तरी मध्य एशिया तक है। शीत काल में प्रवास कर अफ्रीका, भारत तथा चीन में फैल जाता है। यह पूर्व में आसाम में प्रवास करता पाया जाता है।

कृष्ण महाबक का जनन-काल अप्रैल-मई है। यह चट्टानों पर या वृक्ष के कोटरों में या पतली लकड़ियों से घोंसला बनाता है। किन्तु कभी मकानों में घोंसला नहीं बनाता। बस्ती के निकट के वृक्षों पर

भी इसका घोंसला नहीं मिलता। घोंसले के अन्दर शैवाल, ऊन तथा नर्म वस्तुओं का भली भाँति अस्तर दिया होता है। उद्विग्न न किये जाने पर एक ही घोंसला कई वर्षों तक लगातार प्रयुक्त होता रहता है।

यह पक्षी बस्ती से दूर खुले मैदान में रहना पसन्द करता है। अन्य महाबकों की भाँति यह सर्वभक्षी है। इसकी पहुँच में जो भी जीवित जन्तु मिल जाय, यह भक्षण कर लेता है। यह श्वेत महा-बकों की अपेक्षा बड़े झुंडों में भारत में प्रवास करता पाया जाता है। सूखे मैदान तथा खेतों की अपेक्षा आर्द्र या दलदली भूमि ही पसन्द करता है।

शितिकंठ महाबक

स्था० नाम—मानिक जोर, लगलग

श्वेत रंग की ग्रीवा होने से इस पक्षी को श्वेतग्रीव कहना उचित ही है। परन्तु आकार वृहद् होने से महाबक की उपाधि भी देनी पड़ती है। श्वेत महाबक से यह कुछ ही छोटा होता है। खड़ा होने पर यह ३ फीट ऊँचा होता है।

श्वेतग्रीव या शितिकंठ महाबक चमकीले काले रंग का पक्षी है। इसकी काली आकृति की पृष्ठभूमि में श्वेत गर्दन तथा सिर पर पुनः काला रंग का दृश्य टोप-सा ज्ञात होकर इसे सौन्दर्य प्रदान करता है। इसके उदर तथा पूँछ का निम्न तल भी श्वेत होता है। इन रंगों के मध्य पैरों का लाल रंग ध्यान आकर्षित कर लेता है। नर और मादा का रूप समान ही पाया जाता है। जलाशयों या उथले जल के स्थलों में यह अकेले, जोड़े रूप में या झुंडों में पाया जाता है।

शितिकंठ महाबक भारत के अधिकांश भाग में तथा हिमालय की ३००० फुट ऊँचाई की श्रेणी तक भी पाया जाता है।

मलाया प्रायद्वीप तथा अन्य पूर्वी भूखंडों से लेकर सेलेबीज तक भी इसका प्रसार पाया जाता है। एक दूसरी नस्ल अफ्रीका में भी पाई जाती है।

जलप्रधान मैदानी भागों में शितिकंठ महाबक का निवास पाया जाता है। झीलों, तलाबों, जलमग्न स्थलों आदि में यह अकेले या झुंड रूप में रहता है। जिन झीलों या तालाबों का पानी सूख रहा हो उन्हीं में यह विशेष रूप से रहता है। इसे एक ही पैर पर खड़े ध्यानमग्न शिकार की टोह में बराबर ही पाया जा सकता है। शिकार मिलते ही ध्यान टूट जाता है और शिकार मुँह द्वारा निगल लिया जाता है। अन्य जलपक्षियों के मध्य यह बड़े आनंद से रहता है। मेढक, केकड़े, बड़े कीड़े-मकोड़े, घोंघे आदि इसके आहार हैं।



शितिकंठ महाबक

कृष्ण ग्रीव महाबक

स्था० नाम—लोहार जंग, लोह सारंग, बनारस (हि०)
रामसालिक (वंग०) सेसिया हरेंगा (आसाम)

आकार :—पंख—२२½ इञ्च से लगभग २७ इञ्च तक, पूँछ—१० या ११ इञ्च, गुल्फ—१२ या १३ इञ्च।

कृष्ण ग्रीव में वृहद् काली चोंच, चमकीला काला सिर तथा

गर्दन, श्वेत अधोतल तथा श्वेत काले रङ्ग का चितकबरा पङ्ख विशेष पहचान है।

कृष्ण ग्रीव महाबक की चोंच सिरे पर कुछ मुड़ी होती है। और सिर पर पतत्र (पर) निकले होते हैं किन्तु राजबकों तथा कृष्ण महा-बकों की चोंच सीधी होती है।

कृष्ण ग्रीव नाम का महाबक श्वेत महाबक से भी बड़ा होता है। घुटने भर पानी में यह झीलों में अकेला ही खड़ा "बकोध्यान" की स्मृति दिलाता पाया जाता है। विशालकाय काली चोंच, चम-कीली काली गर्दन तथा सिर और श्वेत उदर तथा काले और श्वेत रंग के चितकबरे पंख इसकी स्पष्ट पहचान करा देते हैं।

कृष्ण ग्रीव का प्रसार भारत, सिंहल, बर्मा, श्याम, मलायां तथा हिन्द चीन में पाया जाता है। यह अपने सारे प्रसार-क्षेत्र में अक्टूबर से दिसम्बर तक सन्तानोत्पादन करता है। इसके कुछ पहले या बाद में भी अण्डा देने के उदाहरण पाये जाते हैं। इसका घोंसला भारी भरकम होता है। उसका व्यास ३ फुट से ६ फुट तक हो सकता है। यह एक या दो फुट गहरा होता है जिसमें अण्डों के लिए सुन्दर छेद बना रहता है। पतली लकड़ियाँ तथा टहनियों से यह बना होता है। किसी नर्म पदार्थ का पर्याप्त अस्तर दिया होता है। यह किसी वृक्ष की चोटी पर बना होता है। खेतों के बीच में अकेले-दुकेले खड़े छोटे-बड़े वृक्षों पर इसके घोंसले बने पाये जाते हैं। तीन या चार अण्डे एक बार में देता है।

इसका स्वभाव किसी बड़ी नदी के निकट मैदान में रहने का होता है। यह अन्य महाबकों से अधिक मछली का शिकारी होता है; किन्तु यह अन्य सभी पदार्थ खाता है जो अन्य महाबकों को ग्राह्य होते हैं। यह बहुसंख्यक रूप में कहीं भी नहीं पाया जाता।

इसका प्रसार विस्तृत क्षेत्रों में अवश्य पाया जाता है। यह झुण्डों में भी कभी नहीं पाया जाता।

वृहद् बक

स्था० नाम—हरगिल्ल, गरुड़, पेडा ढौक (हि०) चनियारी ढौक (वंग)

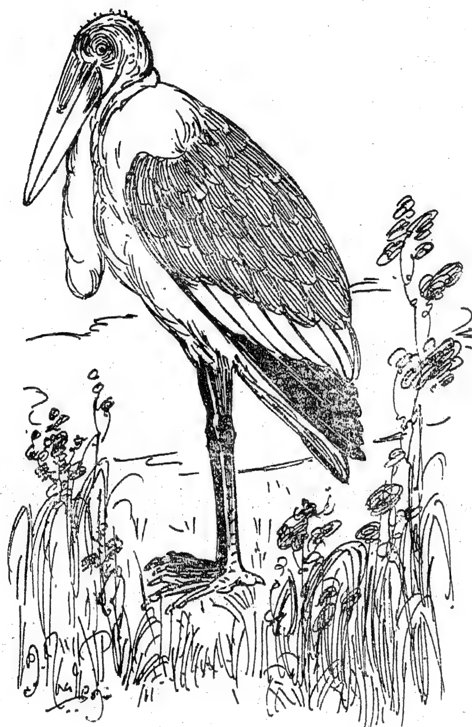
वृहद् बक का आकार गिद्ध से भी बड़ा होता है। खड़ा होने पर इसकी ऊँचाई ५ फुट तक होती है। बकों में इसे सबसे वृहद् आकार तथा कुरूप कहना चाहिये। यह काला, खाकी तथा मटमैला श्वेत रंग का भद्दा पक्षी है। इसकी पूँछ स्थूल, चौकोर और शंकुवत् होती है। सिर तथा गर्दन नंगे होते हैं। गले से एक घेघा-सा थैला एक या सवा फुट लम्बा लाल रंग का लटका होता है। यह झीलों या बस्तियों के पड़ोस में अकेले या झुण्ड में पाया जाता है। नर और मादा दोनों का रंग-रूप समान ही होता है।

एक छोटे आकार का वृहद् बक घेघेरहित होता है। यह भी वनस्पति से आच्छादित स्थलों या जलखंडों के निकट रहता है। यह भारत भर में पाया जाता है।

वृहद् बक का निवास-स्थल उत्तरी भारत, आसाम और बर्मा है। यह मलाया, प्रायद्वीप, जावा, बोर्नियो तथा हिन्द चीन तक फैला मिलता है।

वृहद् बक का रूप तो बेडौल अवश्य होता है, परन्तु लम्बे पैर और ऊँचे डील-डौल के कारण इसका लम्बे पग उठा कर मंथर गति से चलना सेना के निरीक्षक अधिकारी की शान प्रकट करता है। ग्रीष्म ऋतु में यह उत्तरी भारत के कुछ भागों में प्रवास करता है। चील या गिद्ध की भाँति यह भी मलीनता दूर करने में सहायक होता है। कूड़े-कर्कट की सड़ी-गली वस्तुएँ, मृत जन्तुओं के शव

आदि का भक्षण कर यह मनुष्य की सहायता ही करता है। इन पदार्थ के अतिरिक्त मेढक, मछली, सरीसृप, बड़े कीड़े-मकोड़े आदि



वृहद् बक

को भी अपना आहार बनाता है। किंतु गर्दन से घेघे रूप में लटकी थैली का क्या उपयोग है, यह ज्ञात नहीं होता। इस थैली का नासिका द्वारा श्वास लेने के लिए तो सम्बन्ध ज्ञात होता है और

गले के छिद्र से यह असम्बद्ध ही रहता है। यह बात स्पष्ट करती है कि भोजन संचित रखने के लिए यह थैली नहीं है।

वृहद् बक के भारत में भी जहाँ-तहाँ अंडे देने के प्रमाण मिलते हैं, परन्तु यथार्थ जनन-क्षेत्र दक्षिणी बर्मा में पीगू प्रदेश ही है जहाँ क्षुद्र वृहद् बक तथा महास्तव पक्षी भी बहुसंख्यक रूप में अण्डे देते हैं। चट्टानों के उभड़े निकले भाग या विशाल वृक्षों पर इनके घोंसले होते हैं।

भारी-भरकम शरीर होने से वृहद् बक को आकाश में उड़ सकने के पूर्व भूमि पर कुछ दूर दौड़ लगाना आवश्यक होता है, परन्तु एक बार ठीक तरह हवा में उठ जाने पर यह बहुत अधिक ऊँचाई पर गोलाई में मँडराते रहने का प्रेमी होता है। स्वर यंत्र का वृहद् बक में भी अभाव ही होता है। केवल चोंचों के संघर्ष से ही कुछ शब्द. उत्पन्न कर सकता है, किन्तु कभी-कभी जनन-काल में इसके गले से गड़गड़ करने का शब्द भी सुनाई पड़ता है जिसके उत्पन्न करने वाले स्रोत का कुछ पता नहीं। इसे अपना मुख कंधों में दबाये तथा पैर का निम्न भाग आगे कर भूमि पर बैठने का भी अभ्यास होता है।

लघुतर वृहद् बक

स्था० नाम—चिंजारा, चंदना, चंदियारी, वंगगोर, छोटा गरुड़
(हि०) मदनचुर, मदटिकी (वंग०) टोकला मूरा (आसाम)

आकार :—पंख—२३ इञ्च से २६½ इञ्च तक, पूँछ—९ या १० इञ्च। गुल्फ से १०¾ इञ्च तक, चोंच—१०½ इञ्च तक से १२ इञ्च तक।

सिर तथा गर्दन लगभग नग्न होती है। चोंच सीधी होती है। गले में साधारण वृहद् बक को तरह मांसल थैली नहीं लटकी होती।

बदन पर भूरे रंग के बिखरे पतत्र (पर) सभी जगह मोटे होते हैं। ऊपरी तल, पङ्ख, तथा पूँछ काली होती है। उसमें हरे रंग की चमक होती है तथा घने रूप की स्फुट आड़ी पट्टियाँ होती हैं। निम्न पुच्छ-आच्छादक काला होता है। शेष अधोतल श्वेत होता है। साधारण वृहद् बक तथा श्वेताक्ष (लघु) वृहद् बक में यह अन्तर होता है कि साधारण वृहद् बक के गले से मांसल थैली लटकी होती है तथा आकार बड़ा होता है। उसके पंख की लम्बाई ३० इञ्च से अधिक तथा गुल्फ की लम्बाई सवा बारह इञ्च से अधिक होती है किन्तु लघुतर वृहद् बक के पंख की लम्बाई २८ इञ्च से कम और गुल्फ की लम्बाई १२½ इञ्च या कुछ कम होती है।

लघुतर वृहद् बक का प्रसार सीलोन (सिंहल), त्रावनकोर और मलाबार, तथा पूर्वी भारत में बंगाल तथा आसाम तक पाया जाता है। पूर्व में बर्मा, मलाया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो तथा दक्षिण और पश्चिम चीन में भी मिलता है। यह सीलोन तथा दक्षिण भारत में फरवरी से मई तक तथा पूर्वी भारत तथा बर्मा में नवम्बर से जनवरी तक जनन करता है। यह साधारणतः वृक्षों पर उपनिवेश रूप में घोंसले बनाता है। परन्तु कहीं पर साधारण वृहद् बक के साथ चट्टानों पर भी अण्डे देता पाया गया है। यह एक वृक्ष पर पुराने स्थान में ही निरन्तर कितने ही वर्षों तक घोंसले बनाता है और जनन करता है। सिलहट में एक वृक्ष पर १८८५ में एक वृक्ष पर पन्द्रह घोंसले पाये गये थे। १९२९ तक भी उस वृक्ष पर उतनी ही संख्या के घोंसले पाये गये। यह वृक्ष पहले सुनसान जंगल के मध्य था जब उस पर घोंसले बने पाये गये परन्तु बाद में वहाँ चारों ओर जंगल कटकर चाय के बगान लगने पर भी लघुतर वृहद् बक वहीं रहते पाये गए। यह भंगी वृत्ति नहीं रखता अतएव शव छोड़कर कोई भी जीवित जन्तु मिले उसे खा लेता है।

मुर्गी का बच्चा भी गले में निगल सकने योग्य हो तो उसे निगल जायगा।

चित्रित महाबक

स्था० नाम—जंघील, डोक (हिं०) कट सरुंगा, राम झंकार, सोना जंगा (बंग)

चित्रित महाबक एक वृहदाकार पक्षी है। इसकी लम्बी तथा भारी चोंच पीले रंग की होती है जो आगे के सिरे पर थोड़ी-सी मुड़ी होती है। मुख का रंग भी पीला होता है तथा उस पर परों का अभाव होता है। शरीर के परों का रंग श्वेत किन्तु ऊर्ध्व तल हरापनयुक्त काली खड़ी पट्टियों से घने रूप में आच्छादित तथा चिह्नित होता है तथा निम्न तल पर वक्षस्थल पर एक आड़ी काले रंग की चौड़ी पट्टी होती है। पंख तथा कंधों पर भव्य गुलाबी रंग होता है। यह जोड़े या झुण्ड रूप में झीलों या उथले पानी के स्थलों में पाया जाता है। नर और मादा के समान रूप होते हैं।

चित्रित महाबक भारत भर में पाया जाता है। पूर्व के देशों में हिन्द चीन और दक्षिणी-पश्चिमी चीन तक भी इसका प्रसार है। यह हमारे देश का स्थायी निवासी है, परन्तु स्थानीय प्रवास करता है।

चित्रित महाबक को झीलों, जलाशयों आदि में ही अधिकतर पाया जाता है, परन्तु नदियों में भी कहीं-कहीं पाया जा सकता है। जल का अभाव या अतिरेक होने पर सभी जलपक्षी स्थान परि-वतन के लिए विवश होते हैं। चित्रित महाबक भी इस नियम का अनुवर्ती है। साधारणतया जोड़े या छोटी मंडली रूप में ही यह देखा जाता है, परन्तु जनन-ऋतु में इनके विशाल संघ एकत्र हो जाते हैं। 'बकोध्यान' की उक्ति चरितार्थ ही नहीं करता बल्कि सृजन

करने के लिए यह घास उगे दलदली स्थानों या उथले पानी में एक-टक ध्यान लगाये दिन भर खड़ा-खड़ा ही व्यतीत कर देता है। इसके आहार में केंकड़े, घोंघे तथा पानी के कीड़े-मकोड़े आदि भी हैं, परन्तु मेढक और मछली मुख्य आहार हैं।

जल के निकट किसी वृक्ष पर बैठने या बसेरा लेने का यह प्रेमी होता है। आकाश में भी ऊँचाई पर जाकर पंखों को निश्चल रख कर गोलाई में अनेक महाबकों के साथ मँडराते रहने का भी आनन्द लेता है। शिकार के स्थान से बसेरा लेने के स्थान तक प्रात: संध्या आने-जाने के समय चित्रित महाबक अपनी गर्दन आगे कर तथा पैरों को पीछे फेंके पंक्तियों में त्रिभुज की दो भुजाओं के समान उड़ते मिलते हैं। शब्द करने का साधन केवल चंचु दलों का संघर्ष ही है।

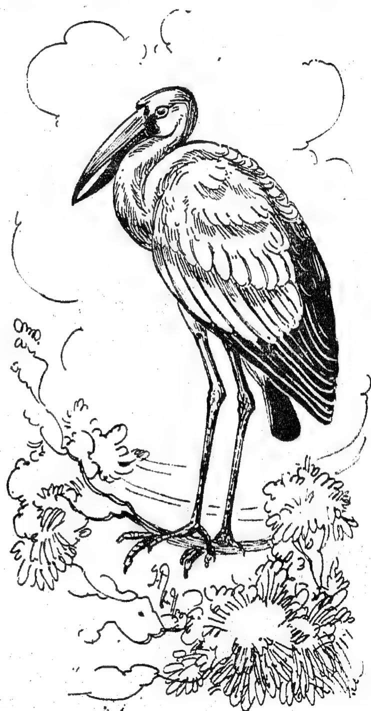
मुक्तचंचु या शिथिल बक (घोंघल)

स्था० नाम—गुंगला, घोंघल, घोंघिला, डोकर (हि०) तोते भंगा, शमच भंगा, समुक खोल, हम्मक करन (वंग०)

शिथिल या मुक्त चंचु बक का नाम इसके चंचु का रूप देखकर ही सार्थक ज्ञात हो सकता है। खड़े होने पर इसकी ऊँचाई लगभग ढाई फीट होती है। इसका रंग धूसरमय श्वेत या श्वेत कहा जा सकता है। पंख का पिछला भाग काला किन्तु शेष श्वेत ही होता है। चोंच लालिमायुक्त काली होती है। उसके दोनों दलों को मेहराब-सा रूप धारण करने से बीच में खुला स्थान बना होता है। इसी कारण इसे शिथिल बक या मुक्त चंचु बक कह सकते हैं। उथले पानी या झीलों में इसे जोड़े या बड़े झुण्डों के

रूप में पाया जाता है। नर और मादा दोनों का ही रूप समान होता है।

शिथिल बक भारत भर में तो पाया ही जाता है, सीलोन, बर्मा, थाईलैंड तथा कोचीन चीन तक में भी पाया जाता है। यह विस्तृत क्षेत्रों में पाया जाता है। छोटे या बड़े झुण्डों में इसे छोटे या बड़े सब आकार के जलाशयों के निकट पाया जाता है। यदि एक तालाब सूख गया तो जलपूरित दूसरे जलाशय में जाकर अपना निर्वाह करता है। वर्षा में पानी के बाहुल्य होने पर भी यह स्थान-परिवर्तन कर लेता है। कहीं-कहीं नदियों या उनके मुहानों पर भी इसे पाया जा सकता है। बक वंश के अन्य पक्षियों की भाँति यह छोटे आकार का बक भी ऊँचे आकाश में उठकर मँडराने में आनन्द लेता है। स्वर-यंत्र-विहीन होना तो जातीय लक्षण ही है। इस बक की चोंचों के दल मेहराब रूप में मध्य भाग में वक्रित किस कारण होते हैं, इसका समाधान नहीं किया जा सका है।



शिथिल बक

इसका प्रधान आहार घोंघे होते हैं। बड़े घोंवे का कठोर पृष्ठ अपनी

चोंच के दलों में दबा कर ध्वस्त कर केवल कोमल अंग को ही उदरस्थ करता है। किन्तु घोंघों को छोड़ कर केंकड़े, मेंढक या कोई भी अन्य सुलभ जन्तु यह अपना आहार बना सकता है। यह पक्षी भी अन्य जल पक्षियों के झुण्ड में अपने घोंसले बना कर अंडे देता है। गाँवों के पड़ोस में या झीलों के ऊपर डालें फैलाये वृक्षों पर इसके बहुसंख्यक घोंसले पाये जा सकते हैं।



बकगण (बकवंश)

पूर्वीय नीलारुण बक

स्था० नाम—नारी, लाल साईं, लाल अंजन (हि०) खैरा (बिहार) लालकंक, कारावल (वंग०) लाल कोई (आसाम)

पूर्वीय नीलारुण के आँख के सामने तथा पीछे पिछली गर्दन तक एक काली रेखा होती है। एक दूसरी रेखा मुख से ऊपर तथा पीछे जाकर काली शिखा से मिली होती है तथा एक तीसरी रेखा गर्दन के पार्श्व की पूरी लम्बाई में पहुँची होती है। हनु तथा कंठ श्वेत होता है। शेष सिर तथा गर्दन लाल मिश्रित भूरी होती है। ऊर्ध्व गर्दन पर एक काली खड़ी रेखा होती है। पीछे की अधोतलीय गर्दन, पीठ, कटि, ऊपरी पुच्छ-आच्छादक, पंख, तथा पूँछ का रंग धूसर होता है। वक्षस्थल के दोनों ओर गहरे बादामी रंग के एक-एक धब्बे होते हैं। वक्षस्थल तथा उदर बादामी काला मिश्रित होते हैं।

इसका प्रसार भारत, सिंहल, बर्मा, हिंदचीन से लेकर फिलीपाइन तथा सेलेबीज तक है।

नीलारुण बक का जनन-काल विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न पाया जाता है। जहाँ छिछले जल के दलदल, तथा नरकुल उगे हुए झीलों के तटीय भाग हैं वहाँ यह पक्षी पाया जाता है। कभी नरकुलों तथा कभी निकट के वृक्ष पर इसके घोंसले पाये जाते हैं।

यह प्रातः सन्ध्या ही आहार ढूँढ़ता है। सिर को स्कन्धों में दबाकर यह चुपचाप खड़ा रहता है। प्रायः एक पैर पर ही खड़ा रहता है। किसी मछली को देखते ही यह अपनी लम्बी चोंच उस पर फेंककर उसे पकड़ लेता है। यह लज्जालु पक्षी नहीं है। कभी-कभी नरकुलों के ऊपर अपनी गर्दन उठाकर आते-जाते लोगों को देखा करता है। यह अपना सिर स्कन्धों में दबाकर तथा पैर सीधे पीछे फेंक कर उड़ता है। इसकी उड़ान पंखों की मन्द-मन्द फट-फटाहट के साथ ही तीव्र होती है।

अंजन बक

स्था० नाम—नारी, साईं, कबुद, अंजन (हि०) खैरा (विहार)
सदा कंका, अंजन (वंग०)

अंजन या धूसर बक खड़े होने पर ढाई फुट ऊँचा होता है। कुल लम्बाई ३ फुट तथा शरीर का मुख्य भाग डेढ़ फुट लंबा होता है। टाँगें पतली और लम्बी होती हैं। गर्दन ऊँट की तरह ज्ञात होती है जो एक आधी गोलाई पीछे की ओर झुक कर बनाती है तथा उसके ऊपर दूसरी आधी गोलाई ऊपर बढ़ कर आगे झुक कर बनाती है। अँग्रेजी के S (एस) अक्षर का अनुकरण करते ही यह आकार कहा जा सकता है। उसमें सीधी, लम्बी तथा नोकीली चोंच बर्छे की भाँति होती है। इसका रंग भस्मीय खाकी होता है। सिर का शीर्ष भाग, गर्दन तथा उदर का रंग श्वेत होता है। सिर के ऊपर पीछे की ओर निकली हुई लम्बी काली शिखा होती है। गर्दन के अग्र भाग में एक स्थूल विन्दुकित काली रेखा नीचे उदर तक बनी होती है। नरकुल उत्पन्न करने वाले तालाबों, झीलों तथा नदियों में यह पक्षी विशेष पाया जाता है।

अंजन बक का अधोभाग अधिकांश हल्का खाकी होता है।

चोंच पीली तथा पैर भूरे होते हैं। उड़ान के समय यह अपनी गर्दन पीठ पर झुका कर रखे रहता है। धीरे-धीरे उथले पानी में चल कर या खड़े ही प्रतीक्षा कर आहार की टोह में रहता है। यह अपनी



अंजन बक

चोंच क्षिप्रता से मार कर पानी या धरातल पर शिकार पकड़ता है। इसका आहार मछली है जिसकी सभी जातियाँ इसे ग्राह्य हैं। इसके अतिरिक्त सरीसृप, उभयजीवी, विशेषतया मेंढक तथा उसके नव-जात शिशु, कुतर कर खाने वाले जन्तु, अन्य क्षुद्र दुग्धपायी जन्तु, छोटे पक्षी तथा जल-पक्षियों के शिशु, शंबुक आदि कोशस्थ जन्तु,

केकड़े, केचुए आदि भी इसके भोज्य पदार्थ हैं। इसे प्राय: एकाकी शिकार करते पाया जाता है। परन्तु शिकार की बहुतायत होने पर भारी संख्या में एकत्र भी पाया जा सकता है।

अंजन बक पूर्वी गोलार्द्ध के विभिन्न देशों का निवासी है। इसके जनन-क्षेत्र का विस्तार निम्न प्रकार है :—उत्तर में यूरोप और एशिया की वन उत्पन्न होने की रेखा तक; पूर्व में पूर्वी साइबेरिया, जापान, फारमोसा और हैनान तक; दक्षिण में बर्मा, भारत, ईरान, इराक, मिस्र, क्रीट, बालकन, मध्य इटली, सारडीनिया, उत्तरी पूर्वी अफ्रिका तथा कनारी द्वीप तक; पश्चिम में स्पेन, फ्रांस, इंगलैंड, आयरलैंड, हेब्राइट्स, स्काटलैंड, आर्कनी तथा नार्वे तक। मडागास्कर, पूर्वी तथा दक्षिणी अफ्रीका में भी कुछ अंजन बक जन्म धारण करते हैं।

भारतीय अंजन बक

स्था० नाम—नारी, साईं, कबुद, अंजन (हिन्दी), खैरा (बिहार), सदा कंका, अंजन (वंग०), नरापना पक्षी (तेलगा), नरायन (तामिल), कलपुआ-करावल-कोका, इन्दुरा कोका (सिंहली), सरदो काई (आसाम)

आकार :—पंख (भारतीय)—१७ इञ्च से १८½ इञ्च तक, (चीनी)—१७ इञ्च से १६ इञ्च तक, पूँछ—७ इञ्च, गुल्फ—५½ से ६½ इञ्च तक, चोंच ४½ से ५½ इञ्च तक।

भारतीय अंजन बक का आकार पाश्चात्य अंजन बक के समान होता है, किन्तु प्रत्येक ऋतु में भारतीय अंजन बक का रङ्ग पाश्चात्य अंजन बक की अपेक्षा विशेष धूमिल होता है। इसके शिशु का रङ्ग भी पाश्चात्य अंजन बक के शिशु के समान ऊपरी तल पर गहरा धूसर, पार्श्व भागों में धूमिल तथा अधोतल में उजला-सा होता है। भारतीय अंजन बक के शिशु का विचित्र रूप होता है। देखने पर

वह ऐसा जान पड़ता है मानो भयभीत हो। उसके बाल बिल्कुल खड़े होते हैं तथा आँखें टकटकी बाँध कर देखती मालूम होती हैं।

भारतीय अंजन बक का प्रसार क्षेत्र मेसोपोटामिया, ईरान, पाकिस्तान, सम्पूर्ण भारत, बर्मा तथा सिंहल (सीलोन) है। तथा फिलीपाइन में भी पाया जाता है। परन्तु पाश्चात्य अंजन बक केवल पश्चिमी देशों में होता है। कभी-कभी सिंध तथा बिलोचिस्तान तक भूले-भटके चला आता है।

भारतीय अंजन बक अधिकांश प्रसार क्षेत्र में जुलाई से सितंबर तक जनन करता है। परन्तु सिंहल में दिसम्बर से मार्च तक अंडे देता है। मध्यवर्ती भारत में अप्रैल, मई और जून में अंडा देने के उदाहरण हैं। नीलारुण बक की वृत्ति के विपक्ष यह वृक्षों पर ही घोंसला बनाने का प्रेमी है। इमली या बबूल के वृक्षों पर जो आंशिक रूप में जल-खंड में हों, यह अधिक घोंसला बनाता है। ये बगुले बहुत निकट-निकट घोंसले नहीं बनाते, परन्तु एक ही क्षेत्र में बहुत से भारतीय अंजन बक अपने घोंसले बनाये हो सकते हैं जो अन्य बगुलों, वृहद् बकों या जलकाकों के घोंसलों के बीच-बीच में बने हो सकते हैं। यह तीन या चार अण्डे एक बार में देता है।

भारतीय अंजन बक नीलारुण और पाश्चात्य अंजन बक की तरह समाज-प्रिय नहीं होता। यह सदा अकेला या जोड़े रूप में ही देखा जाता है। यह अपनी चोंच तथा गर्दन ऊपर उठाये हुए किसी उभड़ी या टेढ़ी-मेढ़ी डाल के समान रूप बना कर किसी बाहरी, नग्न डाल पर चुपचाप बैठा रहता है। यदि कोई निकट जाता जान पड़े तो यह उत्सुकतावश देखने के लिए अपनी गर्दन नीचे कर लेता है।

धूमिल बक

आकार :—पंख १७½ इंच से १९ इञ्च तक, पूँछ ६ से ७½ इञ्च तक, गुल्फ—६½ इञ्च से ७ इञ्च तक, चोंच—६ या ६¾ इञ्च।

धूमिल बक का ऊपरी तल गहरा स्लेटी भूरा, शीर्ष (सिर का ऊपरी भाग) धूसर, कलँगी के सब से लम्बे पतत्र (पर) की छोर श्वेत, अधोतल धूसर भूरा होता है। अंजन बकों में मध्यवर्ती पादाङ्गुलि तथा चंगुल गुल्फ (पंजे से ऊपर पहले जोड़ तक का भाग) की लंबाई से कम लंबे होते हैं तथा वयस्क पक्षियों में शिखा काली तथा शीर्ष (सिर का ऊपरी भाग) श्वेत होता है परन्तु नीला-रुण बकों में मध्यवर्ती पादाङ्गुलि तथा चंगुल की लंबाई गुल्फ की लम्बाई के बराबर या अधिक होती है तथा शीर्ष और कलँगी काली होती है। इनसे धूमिल बक का भेद करने की यह पहचान है कि धूमिल बकों की मध्यवर्ती पादाङ्गुलि और चंगुल की संयुक्त लम्बाई तो अंजन बकों की भाँति गुल्फ की लम्बाई से कम होती है, परन्तु वयस्क धूमिल बकों में शीर्ष (सिर का ऊपरी भाग) और शिखा का रङ्ग धूसर होता है। परन्तु इन्हीं लक्षणों की समानता रखने वाला श्वेतोदर बक भी होता है। अन्तर केवल यह होता है कि धूमिल बक का उदर तथा पार्श्व भाग धूसर होता है, परन्तु श्वेतोदर बक का उदर तथा पार्श्व श्वेत होता है।

धूमिल बक बर्मा में अराकान से लेकर मलाया, पूर्वी द्वीप समूह तथा आस्ट्रेलिया में पाया जाता है।

धूमिल बक अधिकांशतः समुद्रतटीय पक्षी ज्ञात होता है। बङ्गाल की खाड़ी के ऊपरी सिरे पर के भूभागों में इसके नमूने मिले हैं। समुद्र तट से बड़ी नदियों में कुछ दूर ऊपर तक पहुँचता है।

इसका आहार केकड़े, पंक-मत्स्य तथा घोंघे आदि हैं जिन्हें यह ज्वार के वापस चले जाने पर पंकीय तट में यथेष्ट पाता है।

श्वेतोदर बक

आकार:—पंख—२३ इञ्च, पूँछ—८½ इञ्च, गुल्फ ७ से ८½ इञ्च तक, चोंच ६ या ७ इञ्च।

श्वेतोदर बक धूमिल बक समान ही होता है। अन्तर यह होता है कि इसका उदर तथा पार्श्व धूसर होने के स्थान पर श्वेत होता है।

श्वेतोदर बक का प्रसार-क्षेत्र सिक्किम तथा भूटान की तराई से लेकर आसाम तथा उत्तरी बर्मा तक है।

यह पक्षी पहाड़ों की तराई के दलदली भागों या निम्न हिमालय का निवासी है। यह ५,००० फुट की ऊँचाई तक की पहाड़ियों में पाया जाता है। कदाचित् इससे अधिक ऊँचाई पर भी रहता हो। आसाम में अलंघ्य वनों के उथले जल खन्डों या दलदलों में यह विशेष पाया जाता है। सदिया में इसे देखा गया है। यह जोड़े या ४-५ के झुंड में रहता है। यह अपने पंख मन्द गति से ही फटफटा कर बहुत तीव्र उड़ान करता है।

महांग बक

आकार :—पंख (नर)—२३ या २३½ इञ्च, (मादा) २३¾ से २५ इञ्च तक, पूँछ—८½ से ९½ इञ्च तक, गुल्फ ९ या १० इंच, चोंच (नर)—७½ से लगभग ८ इंच तक, (मादा) ७¼ से ७½ इंच तक।

शिखा तथा शीर्ष का रंग गहरा बादामी, हनु, कंठ तथा अग्र-ग्रीवा श्वेत, पश्च ग्रीवा, सिर तथा ग्रीवा का पाश्व धूमिल लाल

भूरा, अग्र ग्रीवा के निचले भाग में एक काली खड़ी रेखा, शरीर का ऊपरी तल गहरा धूसर, अग्र ग्रीवा तथा वक्षस्थल श्वेत तथा मध्य में काली रेखाओंयुक्त और पूर्ण अधोतल गहरा लाल भूरा होता है।

महाङ्ग बक की मध्यवर्ती पादाङ्गुलि तथा चंगुल की लम्बाई अंजन, धूमिल या श्वेतोदर बकों की भाँति ही गुल्फ की लम्बाई से कम होती है, परन्तु शीर्ष (सिर के ऊपरी भाग) तथा शिखा का रङ्ग बादामी होता है।

महाङ्ग बक अफ्रीका में पाया जाता है। भारत में यह जब-तब दिखाई पड़ जाता है। इसके नमूने कलकत्ता, खसिया की पहाड़ी (आसाम), नागपुर, सुन्दर वन, सिंध, बिलोचिस्तान तथा ढाका में पाये जा सके हैं।

यह अफ्रीका में सितम्बर में अंडे देता है। किसी नदी के जल के ऊपर शाखा फैलाये हुए वृक्ष पर लकड़ियों के सङ्घट्ट से यह अपना घोंसला बनाता है। नदी के कछार में भी घोंसला पाया जाता है। यह तीन या चार अंडे एक बार में देता है।

यह बड़ा ही लज्जालु पक्षी है। दूर से ही मनुष्य देख कर उड़ जाता है।

ज्येष्ठ बलाका

स्था० नाम—मल्लंग, बगला, तोर्री बगला, तार बगला, बड़ा बगला (हि०) धार बगला (वंग०)

ज्येष्ठ बलाका को बड़ा बगला या मल्लंग बगला नाम दिया जाता है। यह धवल रंग का लम्बोतरा बगला होता है। इसकी चोंच काली होती है। गो बलाका से इसकी पहचान चोंच के रंग के कारण ही की जा सकती है। गो बलाका (गाय बगुला) की चोंच पीली होती है। जनन-काल में ज्येष्ठ बलाका के मस्तक के पीछे

दो पतली लम्बी शिखाएँ निकल कर नीचे लटक आती हैं। नर और मादा दोनों का रंग-रूप समान ही होता है। इसके शरीर पर सुंदर दर्शनीय पर भी जननकाल में उग कर इसको सौन्दर्य प्रदान करते हैं। केवल परों के लोभी पुरुष इसको पकड़ कर बड़ी ही सावधानी से उन अलंकृत परों को तोड़ लिया करते थे। एक बलाका से एक तोला से भी कम अलंकृत पर प्राप्त होते थे, परन्तु यूरोप के बाजार में इनका मूल्य प्रति तोला ८०-६० रुपये मिल जाता था। अतएव १०-१५ रुपये तोला तो स्थानीय रूप में बलाका के अलंकृत पर बिक जाते थे। फैशन बदलने से परों की खपत अब बन्द है।

लघु बलाका कुछ छोटे डील-डौल का होता है, परन्तु क्षुद्र बलाका तो उससे भी छोटा होता है। इन बलाकाओं के पैर काले होते हैं, किन्तु गर्दन और पैर धड़ की तुलना में लम्बे होते हैं। ज्येष्ठ बलाका एकान्त-प्रिय स्वभाव ही रखता है।

क्षुद्र बलाका यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया में जापान तक पाया जाता है। हमारे देश के मैदानी भागों में सर्वत्र रहता है। मीठे पानी की झीलों, तालाबों तथा नदियों आदि में यह प्रायः रहा करता है। ज्येष्ठ बलाका की तरह यह एकांत-प्रिय नहीं होता। बल्कि सामाजिक वृत्ति रखता है तथा छोटे झुण्डों या बड़ी मंडलियों में रहता है। यह प्रायः लघु बलाका के झुन्ड के साथ सम्मिलित झुण्ड में पाया जाता है। छिछले जल या पंक पर ये पक्षी घूम-फिर कर अपना आहार ढूँढ़ते हैं। इनका आहार कीड़े-मकोड़े, मेढक, छोटे सरीसृप आदि हैं। रात को यह वृक्षों पर बसेरा लेने चला जाता है। धान के खेतों में अन्य पक्षियों के साथ ही बलाका भी आहार की टोह में पड़े मिलते हैं। जलाशयों के ऊपर डाल फैलाये वृक्षों या गाँवों के पड़ोस के वृक्षों के ऊपर इनके घोंसले प्रायः बनते हैं। एक ही स्थान पर प्रति वर्ष एक ही घोंसला प्रयुक्त होता है।

उसका परिष्कार आवश्यकता होने पर कर दिया जाता है और स्थायी घर की तरह अंडा देने के काम आता रहता है।

प्राच्य ज्येष्ठ बलाका

स्था० नाम—सामान्य ज्येष्ठ बलाका के ही समान। आसाम में इसे बोर बोग कहते हैं।

आकार—पंख—१४ इञ्च से १५½ इञ्च तक, चोंच—४ या ४½ इञ्च।

प्राच्य ज्येष्ठ बलाका का आकार साधारण ज्येष्ठ बलाका से अधिक छोटा होता है। साधारण ज्येष्ठ बलाका का पंख १६ से १६ इञ्च तक लंबा होता है। कभी-कभी २० इञ्च से भी कुछ अधिक होता है। उसकी चोंच ४½ से ५¾ इञ्च तक लम्बी होती है परन्तु प्राच्य ज्येष्ठ बलाका की चोंच उससे विशेष पतली और छोटी ही होती है।

प्राच्य ज्येष्ठ बलाका का प्रसार-क्षेत्र सारा भारत, पाकिस्तान, सिंहल, बर्मा तथा पूर्व में मलाया तथा द्वीप समूह होकर आस्ट्रेलिया तक है। इसका जनन-काल सिंहल तथा दक्षिणी भारत में नवम्बर से मार्च तक है। किन्तु उत्तरी भारत में जुलाई से सितम्बर तक है। ये अन्य महाबकों तथा जलकाकों के साथ उपनिवेश रूप में सन्तानोत्पादन करते हैं। कभी कभी इनके घोंसले एक स्थान पर गुच्छ रूप में मिलते हैं। किन्तु अधिकांशतः अन्य पक्षियों के घोंसलों के मध्य इधर-उधर ही बने होते हैं। इसका घोंसला लकड़ियों की बनी मचान-सा होता है जिसमें कभी-कभी नर्म वनस्पति का अस्तर भी होता है। यह तीन या चार अण्डे एक बार में देता है।

यह अन्य छोटे बगुलों की अपेक्षा कम पाया जाता है तथा एकाकी रहने की अधिक वृत्ति रखता है।

भारत लघु बलाका

स्था० नाम---पतंग खा बगला, पतोखा बगला, करचिया बगला

आकार :—पंख—१२ से १३½ इञ्च (या १४ इञ्च) तक, पूँछ ४½ से ५½ इञ्च तक, गुल्फ—६ इञ्च तक, चोंच लगभग ४ इञ्च (४¾ इञ्च भी देखी गई है।)

नर का जनन-काल में रंग रूप श्वेत होता है। साधारण ज्येष्ठ बलाका की भाँति इसमें भी स्कन्ध-आच्छादक पतत्रों से लम्बे पतत्रों (परों) की तीन लटें निकलकर पूँछ तक पहुँची होती हैं। किन्तु वे साधारण ज्येष्ठ बलाका की आभूषणात्मक लटों से अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। अग्र ग्रीवा का आधार भाग तथा ऊर्ध्व वक्षस्थल भी ऐसे ही पतत्रों से विभूषित होता है किन्तु वे बहुत छोटे होते हैं। जनन-काल के अतिरिक्त समय में ये आभूषणात्मक पतत्र लुप्त हो जाते हैं। इसकी आँख पीली, मुख का पतत्रहीन भाग हरा तथा चोंच, पैर और पंजों का रंग काला होता है।

भारत लघु बलाका का प्रसार-क्षेत्र भारत, सिंहल, पाकिस्तान, बर्मा तथा दक्षिण में मलाया, हिंदचीन आदि होकर चीन, जापान तथा फिलीपाइन तक है।

इसका जनन-काल सिंहल में नवम्बर से मार्च तक, दक्षिण भारत में दिसम्बर से जनवरी तक तथा उत्तर भारत, आसाम और बर्मा में जुलाई से सितम्बर तक है। बहुत आर्द्र ऋतु होने पर यह कुछ पहले ही सन्तानोत्पादन कर लेता है। यह बहुत बड़े उपनिवेश रूप में अण्डे देता है। बहुत से घोंसले, कभी-कभी सैकड़ों की संख्या में एकत्र पाये जाते हैं, परन्तु अधिकांशतः अन्य बकों, महाबकों आदि के घोंसलों के मध्य इनके घोंसले होते हैं। यह अपने घोंसले सदा

उनके घोसलों से कुछ दूरी पर रखते हैं। एकबार में चार अण्डे दिए जाते हैं। घोंसला साधारण रूप का होता है।

यह समाजप्रिय पक्षी है। बहुत बड़े झुंडों में एकत्र होता है। इसका आहार कीड़े, टिड्डे आदि हैं। गोबलाका के साथ भी यह कीटों को पकड़ता पाया जाता है। इसको बड़ी आसानी से पाला जा सकता है। पालतू बनाने पर बाटिकाओं में खुले रूप में रह जाता है। सन्तानोत्पादन काल में भी स्वामी के घर के निकट ही अंडे देकर प्रातः सन्ध्या यह उपस्थिति बनाने तथा चारा पाने के लिए स्वामी के पास पहुँचता है। इसके सुन्दर पतत्रों के लिए ग्रामीण लोग इसके भारी झुण्ड बाड़ों में पालते हैं। किसी ग्राम के निकट जंगली 'लघु बलाका का उपनिवेश हो तो उसकी भी रक्षा कर पतत्र प्राप्त किये जाते हैं।

गो बलाका

स्था० नाम—सुरखिया बगला, बदामी बगला, डोरिया बगला (हि०)
गाय बगला (वंग)

मदनपाल निघंटु में बगुले का पर्याय निम्न शब्दों में बताया है :—

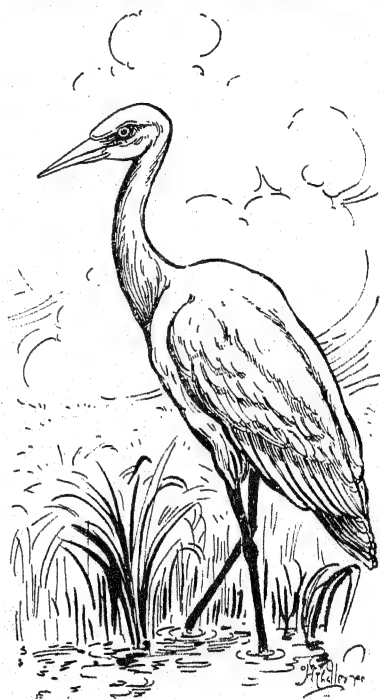
बको बकोटो धवलो बलाका बिसकंठिका ॥ ७५ ॥

अर्थात् बक, बकोट, धवल, बलाका तथा बिसकंठिका बगले के पर्याय नाम हैं।

पक्षी-विज्ञान के विशेषज्ञों ने इन परिचित नामों में से कुछ को विशेष जातियों या उपजातियों का बोध कराने के लिए प्रयुक्त करना प्रारम्भ किया है। फलतः गो बलाका भी एक विशेष जाति का बगुला कहा जा सकता है। इसका आकार पालतू मुर्गी के बराबर होता है। श्वेत रंग का शरीर अपनी उज्ज्वलता के कारण बक का

वंशीय रूप ही व्यक्त करता प्रतीत होता है। इसकी चोंच पीली होती है। नर और मादा दोनों के रूप एक समान होते हैं। जनन-ऋतु में इसके सिर, गर्दन तथा पीठ पर सुनहले लाल रंग के पर निकल आते हैं। इस पक्षी को जलाशय के निकट रहने का प्रेम नहीं होता, बल्कि यह घास चरते हुए ढोरों के निकट ही रहता है। इस कारण इसका नाम गो बलाका है।

गो बलाका की जाति यूरोप तथा एशिया के उष्ण खंडों में पाई जाती है। भारतीय गो बलाका की जाति तो भारत, सीलोन, बर्मा में सर्वत्र पाई जाती है, बल्कि पूर्व के भूभाग में कोरिया तक फैली मिलती है। यह हमारे देश का पूर्ण निवासी या बारहमासी पक्षी ही है।


गो बलाका

जलाशयों, झीलों आदि के परती मैदानों या जल खंड से दूर के घास के मैदानों में यह पक्षी रहता है। यह ढोरों के आगे-पीछे या पैरों के भी बीच आते-जाते या पीठ पर बैठते अपना समय व्यतीत करता है। यह उसका मनोरंजन ही होता है। इनको तो टिड्डे या अन्य कीड़े-मकोड़े की ही टोह रहती है जो पशुओं के चलने-फिरने से व्याघात

पहुँचने के कारण अपनी सुरक्षा की दृष्टि से स्थान बदलते हैं। इसी समय का उन पर दृष्टि जाने से गो बाला उन्हें अपना आहार बना लेता है, किन्तु ढोरों के शरीर पर जो परोपजीवी कीट चिपके पड़े होते हैं उन्हें भी गो बलाका नोंच खाता है। इसका आहार अन्य बकों से कुछ विभिन्न कीड़े-मकोड़ों को ही कहा जा सकता है। परन्तु जब-तब मेढक और सरीसृप भी इसके आहार बनते हैं। यह मक्खियों को भी खा सकता है। स्वभाव में इसे पालतू बक-सा कहा जा सकता है। जल पक्षियों की मंडली में ही गो बलाका भी घोंसले बनाता है।

प्राच्य वेला बक

आकार :—पंख—१०$\frac{1}{2}$ से ११$\frac{3}{4}$ इञ्च तक, पूँछ—लगभग ४ इञ्च तक, गुल्फ—३ इञ्च, चोंच—२$\frac{1}{2}$ इञ्च तक।

प्राच्य वेला बक के रंग-रूप की दो अवस्था होती है। एक अवस्था में श्वेत रंग होता है, दूसरी अवस्था में गहरा स्लेटी काला रंग, हनु प्रायः श्वेत होता है। उदर पीठ की अपेक्षा अधिक भूरा तथा अधिक धूमिल होता है। निचली अग्र ग्रीवा के लम्बे पतत्र वक्षःस्थल पर लटके होते हैं। एक छोटे तथा घने पतत्रों की शिखा होती है। पंख आच्छादक से लम्बी पतत्रीय लट निकली होती है। छोरों का रंग शरीर के शेष भाग के पतत्रों से अधिक धूमिल स्लेटी धूसर होता है।

मध्यवर्ती रूप के चितकबरे पक्षी होते हैं किन्तु वे अधिकांशतः अल्पायु होते हैं। वयस्क पक्षी या तो श्वेत होता है या पूर्णतः स्लेटी होता है।

प्राच्य वेला बक का प्रसार-क्षेत्र ऐंडमन, निकोबार, बर्मा के समुद्रतट, मलाया द्वीप समूह होकर आस्ट्रेलिया तक है।

इसका जनन-काल एंडमन, निकोबार तथा मलाया तट पर जून जुलाई है किन्तु मई या अगस्त सितम्बर तक भी अण्डा देने के उदाहरण मिलते हैं। यह उपनिवेश रूप में अण्डा देता है। इसके घोंसले प्रायः तटों के निकट दलदली स्थानों में ज्वार का पानी पहुँचने की सीमा से कुछ इंचों ही से लेकर छः फुट ऊपर तक बने होते हैं। झाड़ियों में स्थल खंड के मध्य भी इसके घोंसले पाये जाते हैं। नारियल के वृक्ष पर भी इसका घोंसला बनने के उदाहरण मिलते हैं। एक बार में प्रायः तीन अंडे देता है। अंडों का रंग समुद्री नीला या पीला हरा होता है।

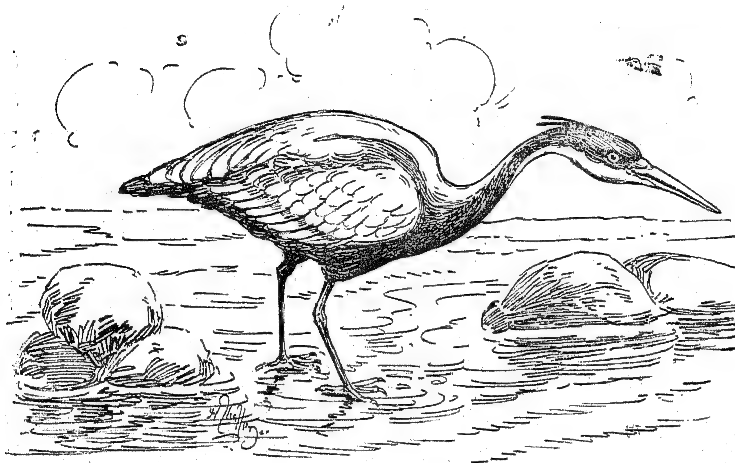
प्राच्य बेला बक समुद्रतटीय पक्षी है। सन्तानोत्पादन काल के अतिरिक्त यह एकाकी तथा शान्त रूप में रहता है। यह दलदली भागों के किसी जड़ पर साए में छिपा-सा चुपचाप बैठा रहता है। इसका आहार छोटे पंक मत्स्य, घोंघे, केकड़े आदि हैं जिन्हें यह तटीय भाग में यथेष्ट प्राप्त करता है। यह मन्दगति से पंख फटफटा कर उड़ता है। परन्तु भयभीत होने पर बहुत तीव्र उड़ सकता है। यह विशेषतया गोधूलि बेला में शिकार करता है।

भारत बेला बक

स्था० नाम—काला बगला

भारत बेला बक का आहार पालतू मुर्गी से कुछ बड़ा ही होता है इसकी गर्दन पतली तथा लम्बी होती है। उसमें दो रूप होते हैं। एक तो शुद्ध श्वेत, दूसरे नीलापन युक्त स्लेटी तथा कंठ पर श्वेत धब्बा। इन दोनों के मध्य का भी रंग हो सकता है जिसमें कुछ अंश श्वेत और कुछ अंश स्लेटी हो। जनन-ऋतु में सिर के पीछे दो पतली लटों की शिखा निकल आती है। लघु बलाका से भारत बेला बक के श्वेत रूप की विभिन्नता ज्ञात करने के लिए हमें पैरों का रंग देखना

चाहिए जो लघु बलाका में काला होता है। परन्तु भारत वेला बक में पीले भूरे तथा हरापनयुक्त रंग का मिला-जुला रूप होता है। बर्मा में एक दूसरी जाति रहती है जिसमें सिर के पीछे वाली शिखा



भारत वेला बक

दो लटों की न होकर एक लट की ही कूर्चवत (कूँची) होती है। ईरान की खाड़ी से लेकर सीलोन के तट तक तथा लङ्का द्वीप में यह पक्षी पाया जाता है।

भारत वेला बक समुद्रतटीय पक्षी ही है। जनन-ऋतु में तो यह झुंडों में रहता है, परन्तु अन्य समय एकाकी ही समय बिताता है। ज्वार के उतार पर खुली चट्टानों या मूँगों की भित्ति पर यह रहता है। किंतु मीठे जलखंडों में यह कदाचित् ही पाया जा सके। ऊपर स्थल पर बैठा यह शिकार की टोह में पड़ा रहता है। शिकार दिखाई पड़ते ही अपनी लम्बी चोंच से उसे पानी में दबोच

लेने के लिए बढ़ जाता है। उथले पानी के तट पर अपने डग बढ़ाता भी इधर-उधर चारा मिलने की आशा से चोंच मारता दिखाई पड़ता है। पंक में रहने वाली मछलियाँ, केकड़े तथा घोंघे आदि इसके मुख्य आहार हैं।

अन्य बकों से भारत वेला बक में यही विभिन्नता पाई जा सकती है कि यह समाज-प्रिय न होने से साधारण रूप में अकेला ही रहता है तथा समुद्र-तट वासी है। गोधूलि बेला में शिकार करने का अधिक प्रेमी होना भी इसका विशेष गुण है। इसके घोंसले पीपल, बेर या जामुन आदि के वृक्ष पर होते हैं जो समुद्र तट के निकट हों। टहनियों से घोंसले बनते हैं, परन्तु कभी-कभी तो घोंसला बनाने में पत्तों के साथ ही टहनी का उपयोग होता है।

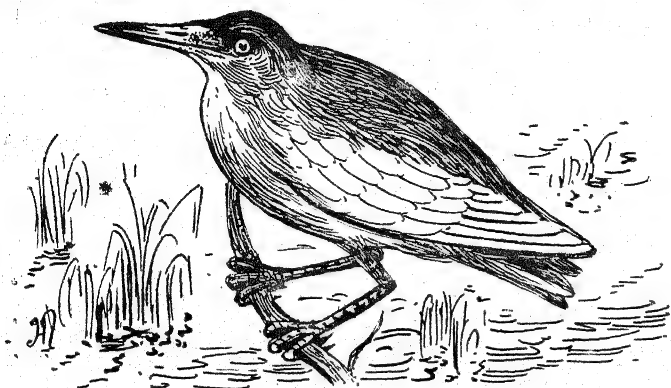
अंध बक

स्था० नाम—बगला, अंध बगला, चाम बगला, (खुंच बगला)

अंध बक या अंध बगला को चाम या खुंच बगला भी कहते हैं। इसका आकार गो बलाका से कुछ छोटा होता है। इसके शरीर के पर श्वेत होते हैं, किंतु बैठे होने पर वे भीतर दबे ही रहते हैं। उनके ऊपर लाल मटमैले बादामी रंग का आवरण होता है। उड़ान के समय इसके पंख, पूँछ और शरीर का अधोतल श्वेत रंग के प्रदर्शित होते हैं। जनन-ऋतु में पीठ पर बालों के समान सुन्दर पर तथा सिर के पीछे श्वेत चोटी निकल आते हैं।

अंध बक भारत के समस्त भागों तथा हिमालय की ३,००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। पश्चिम में ईरान की खाड़ी तथा पूर्व में थाइलैंड और मलाया प्रायद्वीप तक पाया जाता है।

पानी का जहाँ कहीं जिस रूप में भी भंडार हो, चाहे तालाब, झील हो चाहे नदी हो, यह पक्षी वहाँ पाया जा सकता है। जल भरे धान के खेतों, खाइयों, समुद्र तटों तथा उथले जल के मैदानों में यह रहता है। घनी बस्तियों में कूपों तथा जलाशयों के निकट भी यह रहता है। जहाँ तालाब का पानी सूखता जा रहा हो वहाँ जल-जन्तुओं को सहज पाने के लोभ से यह अवश्य रहता है। तट पर



अंध बक

या उथले पानी में ध्यान लगा कर इसे खड़ा पाया जा सकता है। उसका सिर कंधों के बीच दबा-सा रहता है, किंतु ऐसी शिथिल अवस्था में ज्ञात होने पर भी वह बड़ा ही सजग रहता है। उसकी गर्दन सहज मुड़ने वाली तथा तुरन्त झपट मारने में समर्थ होती है। इस कारण वह किसी दुर्भाग्यशाली मेंढक या मछली को अपनी चोंच पहुँच सकने के क्षेत्र में पहुँचते ही दबोच लेता है। उसका बक ध्यान उस क्षण के लिए टूट जाता है। कभी-कभी चुपके-चुपके यह डग भरता कीचड़ के ऊपर चलता भी है।

अंध बक का आहार मेढक, मछली, केकड़े और कीड़े-मकोड़े हैं। कभी तो यह इतना धृष्ट हो जाता है कि तालाबों के निकट काम-धाम में लगे व्यक्तियों की तनिक भी चिंता न कर शिकार ढूँढ़ने में लिप्त रहता है, परन्तु संकट की शंका होने पर पंख फड़फड़ा कर उड़ भी जाता है। सन्ध्या समय कहीं वृक्ष पर झुंडों में ही बसेरा लेकर रात व्यतीत करता है। इसके घोंसले अन्य पक्षियों, बलाका, रात्रिचारी बक आदि की मंडली के ही मध्य बने होते हैं।

चीन अंध बक

आकार:—पंख—८ या ६½ इंच, पूँछ—३½ इंच, गुल्फ—२½ इंच, चोंच—२¾ इंच।

चीन अंध बक के सन्तानोत्पादन वेश में भारतीय अंध बक से केवल इतना अन्तर होता है कि सिर तथा गर्दन के आभूषणात्मक पतत्र भारतीय अंध बक में भूरे रंग के होते हैं, परन्तु चीन अंध बक में बादामी रंग के होते हैं।

इसका अन्य समय में रूप भारतीय अंध बक के समान होता है। परन्तु सिर तथा गर्दन पर अधिक भूरा तथा पीला रंग होता है और पीठ तथा स्कंध पर अधिक गहरा भूरा होता है।

चीन अंध बक का प्रसार-क्षेत्र पूर्वी आसाम, मनीपुर, बर्मा, मलाया प्रायद्वीप से लेकर चीन तथा बोर्नियो तक है। यह एंडमन में भी पाया जाता है।

चीन अंध बक पूर्वी आसाम तथा बर्मा में कभी-कभी भारतीय अंध बक के साथ ही अंडे देता पाया जाता है। अंडों में भेद नहीं जान पड़ता। आसाम में इसका जनन-काल अंतिम जून से अगस्त तक है। यह चीन में मई में अंडे देता है।

भारत लघु हरित बक

स्था० नाम—कंचा बगला (हि०), काना बगला (वंग), दोषी होंगा (तेलगू), दोषी कोफू (तामिल)

आकार:—पंख—७ या ८ इंच, पूँछ—२ या $२\frac{३}{४}$ इंच, गुल्फ-२ इञ्च, चोंच $२\frac{१}{२}$ से $२\frac{३}{४}$ इंच तक।

भाल, शीर्ष तथा आँख के नीचे एक रेखा तथा सिर के पीछे की ओर चोटी काली और हरे रंग की पुटयुक्त होती है। नेत्र के नीचे की रेखा तथा शीर्ष के मध्य का भाग श्वेत होता है। हनु तथा कंठ का मध्य भाग श्वेत, कपोल श्वेत, सिर तथा गर्दन का शेष भाग धूसर, अग्रग्रीवा का मध्य भाग श्वेत किन्तु धूसर तथा भूरे धूसर रङ्ग से चित्रित होता है। पंख आच्छादक पतत्र लबे तथा धूसर रंग में नीले हरे रङ्ग की पुटयुक्त होते हैं। अधो भाग धूमिल धूसर होता है। अधो पुच्छ आच्छादक श्वेत तथा छोरों पर काला होता है। कटि प्रदेश कलौंछ धूसर तथा नीले रङ्ग की पुटयुक्त, ऊपरी पुच्छ आच्छादक तथा पूँछ कलौंछ धूसर तथा हरे रङ्ग की पुटयुक्त होती है। पंख आच्छादक गहरे चमकीले हरे किन्तु छोरों पर श्वेत होते हैं। मुख्य पंख काली तथा गौण या द्वितीयक पंख कुछ अधिक हरी और श्वेत छोरोंयुक्त होती है।

शिशु पक्षियों में पङ्ख आच्छादक पतत्र लम्बे नहीं होते। शीर्ष तथा छोटी शिखा कलौंछ रङ्ग की किंतु लाल-भूरे रङ्ग की रेखाओंयुक्त होती है। ऊपरी तल भूरेपन रङ्ग का, पंखों के पतत्र लाल-भूरे रङ्ग की किनारीयुक्त, अधोतल श्वेत या लाल भूरा किन्तु भूरे रंग की घनी रेखाओंयुक्त होता है।

भारत लघु हरित बक का प्रसार क्षेत्र सिंहल, भारत, बर्मा, श्याम, दक्षिणी चीन तथा मलाया प्रायद्वीप से जावा, बोर्नियो,

सुमात्रा आदि तक है। यह पक्षी समाज-प्रिय नहीं होता। प्रत्येक जोड़ा अपने आखेट-क्षेत्र के अन्दर में सन्तानोत्पादन करता है। यह अपना घोंसला किसी जल-खंड के ऊपर लटकी घनी झाड़ी के ऊपर छोटी-छोटी लकड़ियों से भद्दा-सा बनाता है। घोंसले में अंडा रखने के लिए गड्ढा होता है, परन्तु कोई अस्तर नहीं होता। घोंसला बहुत छिपी-सी जगह में होता है, परन्तु यह अपने मुख से शब्द उच्चारित कर अपनी विद्यमानता व्यक्त करता रहता है।

इसका विचित्र स्वभाव होता है। यह दिन को धूप के समय किसी झाड़ी में छिपा बैठा रहता है। झाड़ी को पीटने पर यह वहाँ से उठ भागने का नाम लेता है। यह सन्ध्या बेला शिकार करता है। अपने बैठने की जगह या उड़ान से यह कभी-कभी मछली पर टूट पड़ता है और डुबकी लगा कर भी उसका पीछा करता है। इसका आहार छोटी मछली, मेढक, केकड़े, घोंघे आदि हैं। इसका संतान-उत्पादन काल मई से अगस्त तक है परन्तु कोंकन (बम्बई राज्य के तटीय भाग) में मार्च-अप्रैल है।

कृष्ण द्वीप हरित बक

आकार:—पंख—६$\frac{१}{२}$ या ६$\frac{३}{४}$ इंच, पूँछ—२$\frac{१}{२}$ इंच, गुल्फ—१$\frac{३}{४}$ इञ्च, चोंच—२$\frac{१}{४}$ या २$\frac{१}{२}$ इंच।

यह भारतीय लघु हरित बक से थोड़ी विभिन्नता रखता है। इसका अधोतल अधिक गहरे रंग का तथा अधिक स्लेटी धूसर होता है। किंतु भारतीय लघु हरित बक का अधोतल अधिक धूमिल तथा न्यून स्लेटी होता है।

यह पक्षी ऐंडमन तथा निकोबार में पाया जाता है। इसी कारण इसका नाम कृष्ण द्वीप या ऐंडमन हरित बक है।

यह भारतीय हरित बक का स्वभाव ही रखता है, परन्तु इसका

घोंसला ज्वार के समय आंशिक रूप में जलमग्न हो जाने वाले वृक्षों की डालों पर होता है। यह मई-जून में अण्डे देता है। दो से चार तक अंडे एक बार देता है। इसके अंडे भारतीय हरित बक से मिलते-जुलते होते हैं।

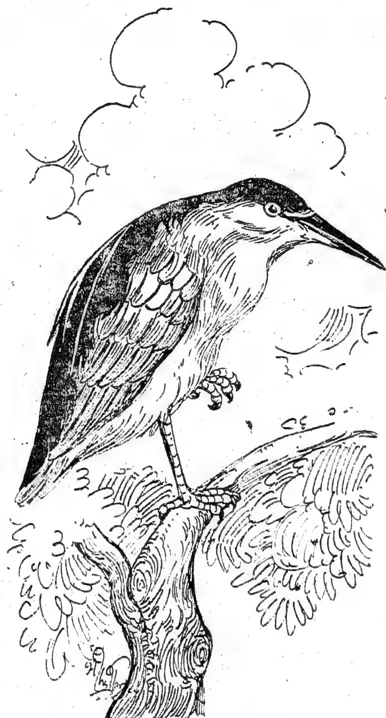
रात्रिचारी बक (नक्त बक)

स्था० नाम—वाक, क्वाक, तार बगला, कोकरई (हि०) कोवा डौक, बतचका (वंग)

नक्त या रात्रिचारी बक की कुल लम्बाई २ फीट होती है जिसका आधा भाग मुख्य शरीर होता है। वयस्क नक्त बक के सिर का शीर्ष और ऊपरी तल अधिकांशतः काला होता है, पंख और दुम खाकी तथा शरीर का अधो भाग श्वेत होता है। पैरों का रंग पीला होता है। अल्पवय नक्त बक का ऊर्ध्वतल गहरा भूरा होता है जिसमें श्वेत चित्तियाँ होती हैं। अधोतल में खाकी रंग पर भूरी खड़ी रेखाएँ होती हैं। तथा पैर हरेपन रंग के होते हैं। इस पक्षी का स्वभाव रात्रि में ही उड़ कर आहार प्राप्त करना होता है, इसी कारण नक्त या रात्रिचारी नाम पड़ा है। गोधूलि बेला हो जाने पर मुख को पीछे दबा कर उड़ने लगता है। अलवण (मीठे) जल के ऊपर सभी प्रकार की मछलियों का रात को शिकार करता है। कुतरने वाले जन्तु, उभयजीवी (मेढक आदि), सरीसृप, (छिपकली आदि), कीड़े-मकोड़े, केकड़े, कोशस्थ जन्तु (घोंघे आदि) का भी आहार करता है। रात को इसे शब्द करते भी पाया जाता है।

रात्रिचारी बक झुंड में रहने का अभ्यस्त है शीतोष्ण कटिबंध के उथले जल के भागों, दलदलों आदि में यह होता है। इसके जनन क्षेत्र का विस्तार निम्न है:—उत्तर में हालैण्ड, जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया, आस्ट्रेलिया, बाल्कन, उक्रायन, डान नदी की घाटी,

कास्पियन सागर, तुर्किस्तान तथा मंगोलिया तक; पूर्व में जापान, फिलीपाइन और सेलेबीज तक; दक्षिण में हिंद महासागर, ईरान,



रात्रिचारी (नक्त) बक

एशिया माइनर, मिस्र, सिसली, ट्यूनिस और मोरक्को तक, पश्चिम में दक्षिणी पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस और बेलजियम तक; इसके अतिरिक्त मध्य और दक्षिणी अफ्रीका, हवाई द्वीप, और पश्चिमी गोलार्द्ध में भी जनन-क्षेत्र पाया जाता है।

मलयक ज्योत्स्ना बक

स्था० नाम—जुन बगला (हि०) राजबोग (आसाम)

आकार--पंख—६ या ७ इञ्च, पूँछ—४ या ४½ इंच, गुल्फ—२½ या ३ इंच, चोंच—लगभग २ इंच।

मलयक ज्योत्स्ना बक की चोंच नक्त बक के समान पुष्ट किन्तु कुछ छोटी होती है। मध्य पादाङ्गुलि तथा चंगुल की लम्बाई चोंच की लम्बाई से अधिक किन्तु गुल्फ की लम्बाई से कम होती है। सिर पर शिखा होती है। गर्दन छोटी तथा मोटी होती है। पङ्ख गोल होते हैं।

मलयक ज्योत्स्ना बक का भाल, शीर्ष तथा शिखा काली किन्तु कुछ धूसर रंग की आभायुक्त होती है। हनु तथा कन्ठ धूमिल केसरिया होता है। किन्तु कन्ठ पर मध्य भाग में एक काली रेखा भी होती है। सिर तथा गर्दन के पार्श्व, पीठ, स्कन्ध तथा पङ्ख आच्छादक का रंग बादामी कत्थई होता है। पूंछ काली, अग्रग्रीवा तथा वक्षस्थल केसरिया, मध्य भाग में काली तथा श्वेत रेखाओंयुक्त तथा शेष अधोतल बादामी काला तथा श्वेत रंग का चित्रित होता है। पिछली पीठ, कटि तथा ऊपरी पुच्छ आच्छादक भूरे तथा केसरिया रंग के चित्रित, मुख्य पङ्ख धूसर मिश्रित काली, श्वेत किनारीयुक्त तथा गौण या द्वितीयक पङ्ख धूसर मिश्रित काली किन्तु बादामी किनारीयुक्त होती है।

मलयक ज्योत्स्ना बक का प्रसार-क्षेत्र सिंहल, दक्षिणी बम्बई राज्य तक मलाबार तट, आसाम, मनीपुर, बर्मा तथा दक्षिण में मलाया होकर सुमात्रा, जावा, बोर्नियो तथा फारमूसा तक है।

आसाम में यह मई-जून तथा त्रावनकोर में जून में इसके सन्तानोत्पादन के उदाहरण मिले हैं। यह एकाकी वृत्ति का पक्षी है।

दो घोंसले एक स्थान पर कहीं भी नहीं मिलते। भूमि से यथेष्ठ ऊँचाई पर वृक्षों पर इसके घोंसले होते हैं किन्तु छोटे जलीय पौधों के ऊपर भी यह घोंसला बनाता है। प्रायः नदी तथा सोतों के तट के वृक्षों पर ही घोंसले होते हैं। यह चार या पाँच अण्डे एक बार देता है।

यह लज्जालु तथा मनुष्य से दूर रहने वाला पक्षी है। खुले में कभी भी नहीं पाया जाता। यह रात को ही शिकार करता है। यह अपने पङ्ख तीव्र गति से फटफटा कर उड़ता है। उड़ते समय कुछ शब्द भी करता रहता है। इसका आहार मेढक, गिरगिट और कदाचित् मछली भी है।

लघु ज्योत्स्ना बक

आकार—पंख—९ या ९½ इञ्च, पूँछ—३ या ३½ इंच, गुल्फ—२¾ इञ्च, चोंच—लगभग १¾ इञ्च।

यह आकार में मलयक ज्योत्स्ना बक से कुछ छोटा होता है। यह निकोबार द्वीप में ही पाया जाता है। मलयक ज्योत्स्ना बक के पंख की लम्बाई जहाँ १० इञ्च होती है, वहाँ इसकी पंख की लंबाई साढ़े नौ इञ्च से कुछ अधिक होती है।

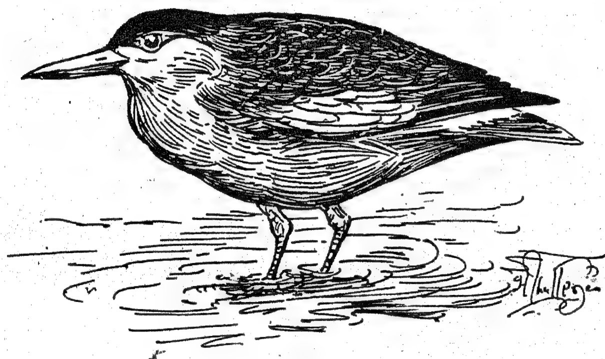
क्षुद्र ज्योत्स्ना बक

स्था० नाम—जुन बगला (हि०) काट बगला (वंग)

क्षुद्र ज्योत्स्ना बक की लम्बाई लगभग १४ इंच होती है। मुख्य शरीर इसका आधा लम्बा होता है। नर पक्षी में शीर्ष तथा ऊर्ध्व तल काला तथा हरा मिश्रित रंग होता है। अधोतल लाल होता है किंतु ऊपरी वक्षस्थल के छोरों पर गहरा रंग होता है। मादा का रंग इससे कुछ भिन्न होता है। शीर्ष का रंग काला तथा ऊर्ध्व तल का

कत्थई होता है। अधोतल लाल किंतु रेखाओं युक्त होता है। नर तथा मादा दोनों के ही ऊपरी पंख पर एक गोला-सा हलके रंग का धब्बा होता है। नर में यह विशेष हलका होता है। नर की उड़ान में तो यह और भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अल्पवय पक्षी के शरीर पर बहुत अधिक रेखाएँ होती हैं। इसकी चोंच का रंग पीला हरा तथा पैर और उँगलियों का रंग हरा होता है। उड़ान के समय इसका सिर पीछे दबा तथा पैर पीछे मुड़ा होता है।

क्षुद्र ज्योत्स्ना बक का आहार मुख्यत: कीड़े-मकोड़े हैं। परन्तु



क्षुद्र ज्योत्स्ना बक

मछलियाँ भी यथेष्ट खाता है। सरीसृप, उभयचारी, केकड़े, घोंघे आदि भी इसके आहार हैं किंतु कभी-कभी चिड़ियाँ और दुग्धपायी जन्तु भी खा जाता है।

क्षुद्र ज्योत्स्ना पक्षी नरकुलों की बाढ़ में ही रहने वाला पक्षी है। इसका जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार है:—उत्तर में बाल्टिक तथा वोल्गा की ऊपरी घाटी तथा खिरगीज स्टेपी तक; पूर्व में तुर्किस्तान, काश्मीर और सिंध तक; दक्षिण में ईरान, ईराक, सीरिया, मिस्र,

भूमध्य सागर, ट्यूनिस, अलजीरिया और मोरक्को तक; पश्चिम में स्पेन, फ्रांस, बेलजियम और हालैंड तक।

एक उपजाति दक्षिण पश्चिम अरब और सहारा के दक्षिण अफ्रीका के भाग में होती है। दूसरी मडागास्कर में पाई जाती है, तीसरी आस्ट्रेलिया में होती है। चौथी उपजाति न्यूजीलैंड में उत्पन्न होती है। पश्चिमी यूरोप में अंडा देने वाले पक्षी कदाचित दक्षिणी अफ्रीका प्रवास करने शीत ऋतु में पहुँच जाते हैं।

पीत ज्योत्स्ना बक

स्था० नाम—जुन बगला (हि०) कट बगला
(वंग०) मन्नल नारी (सिंहली तामिल)

आकार—पंख—५ या ५$\frac{1}{2}$ इञ्च, पूँछ—१$\frac{3}{4}$ इञ्च, गुल्फ—२ इञ्च, चोंच—२ या २$\frac{1}{2}$ इञ्च।

क्षुद्र ज्योत्स्ना बक से इसमें यह विभिन्नता होती है कि इसकी चोंच लम्बाई मध्य पादांगुलि तथा चङ्गुल की लम्बाई से अधिक होती है, परन्तु क्षुद्र ज्योत्स्ना बक में चोंच की लंबाई मध्य पादाङ्गुलि तथा चङ्गुल की लम्बाई के लगभग बराबर होती है।

पीत ज्योत्स्ना बक का प्रसार-क्षेत्र सिंहल, भारत, तथा पूर्व में बर्मा, मलाया, सिलेबीज होकर दक्षिण चीन तक है। भारत में यह त्रावनकोर तथा मलाबार में बारहमासी है। यह पूर्वी बङ्गाल (पाकिस्तान), आसाम तथा बर्मा के अनेक भागों में भी पाया जाता है। किन्तु शेष भारत में बहुत कम मिलता है।

अपने सारे विस्तार-क्षेत्र में जून से सितम्बर तक सन्तानोत्पादन करता है। आसाम में यह अधिक पाया जाता है। किन्तु लोहित ज्योत्स्ना बक से कम संख्या ही वहाँ होती है। इसका घोंसला इतनी अधिक छिपी जगह होता है कि उसका पता लगना कठिन-सा

होता है। कोई बिल्कुल निकट से जाय तब भी पक्षी चुपचाप बैठा रहता है। अंडों का आकार तो क्षुद्र ज्योत्स्ना बक के अंडों से कुछ छोटा होता है। परन्तु रङ्ग में अन्तर नहीं होता है।

इसका स्वभाव गोधूलिवेला या रात्रि में चारा ढूँढ़ने का नहीं होता। दलदली स्थानों में जलीय वनस्पतियों के निकट दिन को अपना आहार ढूँढ़ता रहता है। कोई आदमी दिखाई पड़ने पर यह लम्बे डग भरकर चौकन्ना होकर परिस्थिति पर विचार-सा करता जाकर दूर जङ्गल में भाग जाता है। इसका मुख्य आहार छोटे-मेंढक तथा जलीय कीट हैं। बकों को ग्राह्य अन्य वस्तुएँ भी यह खाता है।

लोहित ज्योत्स्ना बक

स्था० नाम—लाल बगला (हि०) खैरी बगला (वंग०)

आकार—पंख—$५\frac{१}{२}$ या ६ इञ्च, पूँछ—$१\frac{३}{४}$ इञ्च, गुल्फ—२ इञ्च, चोंच—२ इञ्च।

क्षुद्र ज्योत्स्ना बक तथा पीत ज्योत्स्ना बक से इसमें विशेष अंतर यह होता है कि उन दोनों में गुल्फ के ऊपर का पैर का भाग (जंघा) बीच के जोड़ तक पतत्रों (परों) से आच्छादित होता है। परन्तु लोहित ज्योत्स्ना बक में जोड़ के ऊपर कुछ दूर तक जंघा नग्न ही होता है।

इसका प्रसार-क्षेत्र भारत, सिंहल, बर्मा, चीन तथा आमूर तक का भूखंड है। यह मलाया, फिलीपाइन तथा सिलेबीज तक भी पाया जाता है। भारत में यह त्रावनकोर तथा मलावार में सन्तानोत्पादन करता है किन्तु अधिक संख्या में नहीं मिलता। पश्चिम भारत में कच्छ, राजपूताना, सिन्ध तथा पश्चिमी प्रदेश (पाकिस्तान) में यह संतानोत्पादन के लिए वर्षा के आरंभ में प्रवास कर पहुँचता है। पूर्वी

बंगाल तथा आसाम के पूर्वी भागों में यह बारहमासी है। उन स्थानों में साल भर तक साधारण रूप में पाया जाता है। सिंध तथा उसके पश्चिमोत्तर प्रदेश में सूखा मौसम प्रारम्भ होते ही यह वहाँ हटने लगता है तथा पूर्वी बंगाल या बर्मा की तरफ अधिक नहीं पाया जाता। यह विस्तृत दलदली भागों में रहता है। गोधूलि वेला में ही अपना आहार ढूँढ़ने निकलता है। घनी छाया होने तथा कोई बाधा उपस्थित न होने पर यह दिन को भी आहार ढूँढ़ता है। यह अन्य बकों की ही भाँति लज्जालु है तथा जहाँ तक सम्भव हो उड़ने से बचता है और भूमि या जलीय वनस्पतियों पर चढ़कर काम चला लेना चाहता है।

श्याम ज्योत्स्ना बक

स्था० नाम—काला बगला (हि०) नल बगला (बंग०) आई जान (आसाम) कारू नारी (सिंहली तामिल), खैरा बग (नौ गाँव, आसाम) कालू कोका (सिंहली),

आकार—(नर) पंख—८ या ८$\frac{१}{२}$ इञ्च, (मादा) ८ इञ्च, पूंछ—३ इञ्च, गुल्फ—२$\frac{३}{४}$ इञ्च, चोंच—३ इंच।

नर का ऊपरी तल गहरा स्लेटी धूसर रङ्ग, पर नीले धूसर रङ्ग की झलक से लेकर काला रङ्ग तक विभिन्न होता है। गर्दन का पार्श्व रामरज सा पीला, निम्न कपोल चित्रित लाल भूरा, बादामी, और काला या स्लेटी, हनु तथा कंठ श्वेत किन्तु मध्य में नीचे तक एक लाल भूरे धब्बों की रेखायुक्त, अग्रग्रीवा स्लेटी काला, गहरे बादामी तथा उजलेयुक्त लाल भूरे रंग का मिश्रित, वक्षस्थल, उदर तथा शेष अधोतल धूसर से लेकर भूरा मिश्रित काला तक होता है।

मादा का रङ्ग ऊपर तल पर अधिक भूरा तथा न्यून स्लेटी धूसर होता है। उदर हल्का भूरा तथा मध्य में अधिक उजला होता

है। वक्षस्थल के पतत्र भूरे होते है जिन पर श्वेत रेखाएँ होती है। कुछ केशरिया चिह्न भी होते हैं। शिशु में ऊपरी तल गहरा भूरा तथा प्रत्येक पतत्र हल्के लाल भूरे रङ्ग की किनारी युक्त होता है। निम्न अग्रग्रीवा और अगला वक्षस्थल लाल भूरा होता है।

यह सारे भारत में पाया जाता है किन्तु अधिकांश भाग में जहाँ-तहाँ थोड़ी संख्या में ही पाया जाता है। मलाबार तथा त्रावनकोर में साधारण रूप से पाया जाता है। यह बर्मा से लेकर मलाया, चीन फिलीपाइन तथा सिलेबीज तक भी पाया जाता है।

यह कुछ ऊँचाई पर बेंत या बाँस के झुरमुटों में घोंसला बनाता है। दो या तीन अण्डे एक बार में देता है। जून से सितम्बर तक जननकाल ज्ञात होता है। यह पूर्णतया रात्रिजीवी पक्षी है। इसका आहार मछली, मेढक आदि है।

गोनर्द ज्योत्स्ना बक (पट्टि पृष्ठ कह्व)

स्था० नाम—नीर गौंग, बाज

गोनर्द ज्योत्स्ना बक की लम्बाई ढाई फीट होती है जिसमें मुख्य शरीर की लंबाई आधे से कम ही होती है। नर और मादा दोनों का रूप समान होता है। शीर्ष का रंग काला, शिखा का रंग लाल, ऊर्ध्व तल का रंग लाल भूरा किंतु काली चित्तियों से भरा हुआ होता है। अधोतल का रंग हल्का लाल होता है। हनु के भाग से वक्षस्थल पर मटमैली पीली पट्टी होती है जिस पर गहरे रंग की रेखाएँ होती हैं। बगल की ओर लालिमामय रंग हो जाता है। चोंच हरी पीली होती है। ऊर्ध्व तथा अधोपाद का रंग हरा होता है। उड़ान के समय यह पक्षी भी अपनी गर्दन पीछे सिकोड़ लेता है। खड़े होने पर भी यह गर्दन सिकोड़े रह कर एक गोल-मटोल रूप बना लेता है या गर्दन और चोंच ऊपर की ओर फैलाये रख

सकता है। यह रूप नरकुलों के समान ही बन कर अपने आकार को छिपा रखने के ही हैं। इसकी उड़ान तथा चलने आदि के ढंग अन्य बकों के ही सदृश होते हैं। इसका मुख्य आहार मछली है।



गोनर्द ज्योत्स्ना बक

विशेषतया ईल नामक लम्बोतरी मछली ही यह पसन्द करता है। इसके अतिरिक्त छोटी-मोटी चिड़ियाँ, कुतरने वाले जन्तु, सरीसृप, केकड़े, घोंघे, कीड़े-मकोड़े आदि भी इसके आहार हैं।

गोनर्द ज्योत्स्ना बक को नरकुलों के मध्य घोंसला बनाते पाया जाता है। इसके जनन-क्षेत्र निम्न हैं:—उत्तर में दक्षिणी स्वीडेन, फिनलैंड, रूस की ड्वाइना नदी से आर्चेंगल तक तथा वोल्गा की

ऊपरी घाटी से खिरगीज स्टेपी; दक्षिणी साइबेरिया, मंचूरिया, आमूर नदी तक; पूर्व में जापान तक; दक्षिण में उत्तरी चीन, मंगोलिया, मंचूरिया, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, ईरान, इराक, फिलस्तीन, भूमध्य सागर, ट्यूनीशिया, अलजीरिया और मोरक्को तक; पश्चिम में पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांस, ब्रिटेन और डेनमार्क तक।

कुछ अन्य उपजातियाँ भी होती हैं जिनमें एक उपजाति दक्षिणी अफ्रीका में होती है। दूसरी उपजाति आस्ट्रेलिया, टस्मानिया और न्यूजीलैंड में पायी जाती है।



बलाक गण (बलाक वंश)

बलाक (राजहंस)

स्था० नाम—बग हंस, राजहंस, कान थुनती (वंग०)

संस्कृत ग्रन्थों में बक, सारस, क्रौंच तथा हंस आदि विभिन्न जातियों के जलपक्षियों का उल्लेख है। उन नामों में आज के किन पक्षियों को गिना जाय, यह कठिनाई हो सकती है।

मदनपाल निघंटु में हंस का नाम देते हुए लिखा है :—

हंसाः श्वेत गरुत्मानः सौकारक्तौ पदानहौ।
राजहंसः स्मृतः कृष्णैर्धार्तराष्ट्रोऽथ मालिकः ॥७०॥

हंस के पर्याय शब्द हंस, श्वेतगरुत्मान, सौक, आरक्त और पदानह हैं।

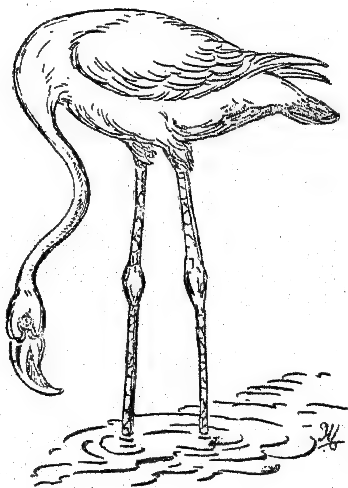
काला पक्षी राजहंस होता है। धार्तराष्ट्र और मालिक भी नाम है।

इस पक्षी का स्थानीय रूप से राजहंस नाम प्रचलित पाया जाता है। फ्लेमिंगो नाम से यह पक्षी अँग्रेजी में पुकारा जाता है।

बलाक की धड़ साधारण हंस के बराबर होती है, परन्तु पतले पैर तथा गर्दन का अत्यन्त लम्बोतरा रूप होता है। इसका रंग मट-मैला गुलाबी श्वेत होता है। पैर नग्न तथा लाल गुलाबी रंग के होते हैं। इसकी स्थूल चोंच विचित्र रूप की होती है। वह गुलाबी रंग की होती है तथा आधी दूर के आगे कटार या हँसिया की तरह

मुड़ी होती है। इसके पैरों की सामने की अँगुलियाँ बत्तख की भाँति झिल्लियों से बँधी होती हैं जिन्हें जालांगुलिक होना कहते हैं। इसके नर और मादा का समान रंग-रूप ही होता है। पंखों का भाग लाल रंग का तथा छोरों पर काली पट्टीयुक्त होता है जो उड़ान के समय भली-भाँति प्रदर्शित होता है। उथले जलाशयों या दलदलों के निकट इसके झुण्ड रहते हैं।

बलाक पक्षी दक्षिणी यूरोप, अफ्रीका तथा एशिया में निवास करता है। भारत में छिटके रूप में सर्वत्र ही पाया जाता है। छिछले तालाबों में या विशेषत: खारे पानी की झीलों में यह रहता है। साँभर झील (राजपूताना) तथा कच्छ की खाड़ी में इसके सर्वोत्तम स्थान हैं। इसका झुण्ड सैकड़ों पक्षियों का बना होता है। छिछले जल में चलकर अपनी चोंच पानी में डुबोकर यह शिकार ढूँढ़ा करता है। अपनी मुड़ी चोंच से यह पंक को खुरच कर आहार ढूँढ़ने में बड़ी सुविधा का अनुभव करता है। नोंक से मिट्टी खुरच कर चोंच की फाँस में मिट्टी एकत्र



बलाक

कर सकता है। कंघीनुमा छोरों के कारण पानी और मिट्टी तो बाहर निकाल फेंकता है, परन्तु खाद्य द्रव्य चोंच में ही रह जाते हैं। छोटे-छोटे घोंघे, केकड़े तथा वानस्पतिक पदार्थों पर ही यह जीवन-

यापन कर लेता है। उड़ान के समय बलाक को त्रिभुज की दो भुजाओं समान पंक्तियाँ बनाकर व्यवस्था प्रकट करते देखा जाता है। कभी लम्बी लहराती रेखा में भी ये उड़ते पाये जाते हैं। उड़ान के समय कृशकाय लम्बोतरी गर्दन आगे फैली हुई होती है तथा पैर पीछे की ओर आड़े रूप में मुड़े होते हैं। विश्राम करते समय यह एक पैर पर ही खड़ा रहता है तथा सर्पनुमा लम्बी गर्दन कई मोड़ों में झुकी होती है। सिर पीठ पर परों के बीच जा पहुँचा होता है।

बलाक पक्षी स्पेन, इराक या अन्य विदेशों में अंडे देता है। परन्तु भारत में केवल कच्छ की खाड़ी ही उसका जनन-क्षेत्र है, अतएव मानसरोवर वासी मराल से इसकी कोई तुलना नहीं। इसके घोंसले शंकु के आकार के मिट्टी के ढूहे होते हैं जो सैकड़ों की संख्या में जनन-क्षेत्र में इनके द्वारा निर्मित होते हैं। कीच रूप में रहने पर ही उसे खुरच कर इन शंकु-आकार के घोसलों का निर्माण हुआ होता है। कोई शंकु छोटा ही होता है। किन्तु कोई कई फीट ऊँचा भी होता है। इन ढूहों के ऊपरी भाग में एक छिछला गड्ढा बना कर उसमें अंडे दिये जाते हैं। अंडों के ऊपर मादा अपने पैर समेट कर सेने के लिए बैठती है। दो अंडे ही एक बार में उत्पन्न होते हैं।

लघु बलाक

आकार—पूरी लम्बाई—३४ इञ्च से ५० इंच तक, पंख—१३ से १४ इंच तक, पूँछ—५$\frac{3}{4}$ इंच तक, चोंच—४$\frac{3}{4}$ इंच तक, मादा में पंख की लम्बाई—४$\frac{3}{4}$ इंच, चोंच ४ इंच।

लघु बलाक का रङ्ग पीलापनयुक्त चटक गुलाबी होता है। साधारण बलाक से इसमें यह विभिन्नता होती है कि इसमें ऊपरी

चोंच निचली चोंच के आगे तक नहीं बढ़ी होती और कंठ बलाक की तरह नग्न नहीं होता। बल्कि उसमें पतत्र (पर) निकले होते हैं। मादा नर समान होती है किन्तु छोटी और फीके रङ्ग की होती है। उसके स्कंध, पीठ तथा वक्षस्थल पर गहरा लाल रङ्ग नहीं होता। शिशु के रङ्ग में गुलाबी अधिक तथा भूरे या लाल भूरे रंग की पुट कम होती है। उसका रंग अधिक चटकीला ही कहा जा सकता है।

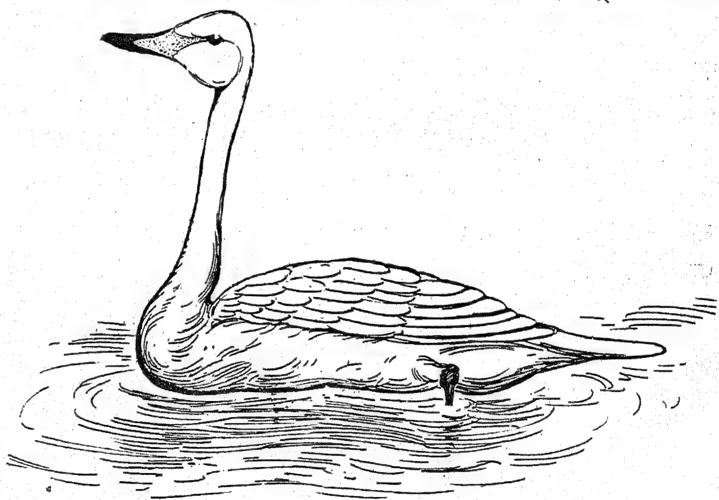
लघु बलाक का प्रसार क्षेत्र दक्षिण-अफ्रीका में सर्वत्र है। अफ्रीका के पूर्वी तट पर उत्तर में अबिसीनिया तक पाया जाता है। उत्तरी पूर्वी अफ्रीका से उत्तरी पश्चिमी भारत या पश्चिमी पाकिस्तान तक आता है। यह भारत के अनेक भागों में अन्तिम सितम्बर से प्रारम्भ जुलाई तक पाया जाता है। कदाचित् लाल सागर के तट पर जनन कर यह भारत में प्रवास करता है। पश्चिमी पाकिस्तान में सिन्ध नदी के रेतीले तट पर इसका अंडा भी पाया गया था अतएव सम्भव है इधर जनन करता हो। पाकिस्तान में सिन्ध तथा भारत में दिल्ली के निकट सिकंदराबाद और राजपूताने में साँभर झील में पाया गया है। साँभर झील में इसे बहुसंख्यक रूप में पाया जाता है।



हंस गण (हंस वंश)

धार्तराष्ट्र

धार्तराष्ट्र वृहदाकार पक्षी है। इसकी लम्बाई लगभग ५ फुट होती है। मुख्य शरीर उसका आधा लम्बा होता है। इसका रंग श्वेत होता है किन्तु अल्पवय धार्तराष्ट्र (शिशु) कुछ धूसर रंग का



धार्तराष्ट्र

होता है। बड़ी लम्बी गर्दन को यह अन्य हंसों की अपेक्षा सीधे खड़ा रखता है। चोंच पर पीला धब्बा होता है जो मूल भाग से

गावदुम बनता हुआ नेत्र के नीचे के एक स्थान पर समाप्त होता है। उड़ान के समय इसकी गर्दन सीधी फैली होती है। इसे सीधी दिशा में अविचल रूप से उड़ते देखा जाता है। इसका आहार पानी के अन्दर या भूमि पर उगी घास तथा पौधे होते हैं। यह खुले मैदानों के जलखंडों के तट या द्वीपों पर जलीय पौधों से ही अपने अंडे देने के लिए घोंसले बनाता है।

धार्तराष्ट्र का निवास-स्थान एशिया तथा यूरोप के खुले स्थानों के जलखंड हैं। इसका जनन-क्षेत्र उत्तर में आइसलैंड, स्काटलैंड तथा नार्वे, स्वडेन, फिनलैंड, ऊपरी वोल्गा, खिरगीज स्टेपी मैदान, तुर्किस्तान, अल्ताई पर्वत, आमूर नदी, जापान तथा कमचटका से उत्तर उत्तरी ध्रुवसागर तक है। यह पक्षी दक्षिणी यूरोप, एशिया, माइनर, ईरान, भारत तथा चीन में शीत ऋतु में प्रवास करने पहुँचता है।

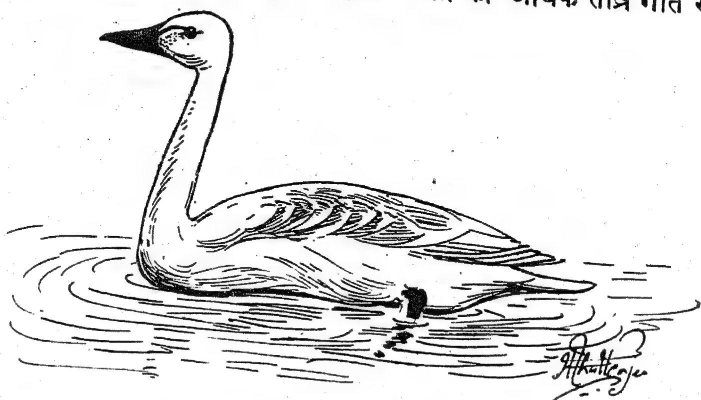
सन्तानोत्पादन-काल के अतिरिक्त यह छोटे झुण्डों में एकत्र होता है और सात तक की संख्या के झुण्ड में भारत प्रवास करने आता है। नेपाल, व्यास नदी (पश्चिमी पञ्जाब), लरकाना (सिंध) तथा राजपूताना में धूसर रंग में पाया जा सका है। यह बड़ी नदियों तथा खुले जलखण्डों के निकट पाया जाता है।

पाश्चात्य महाहंस

पाश्चात्य महाहंस को बेविक का महाहंस भी कह सकते हैं। बेविक ने इस जाति की खोज करने में सफलता प्राप्त की होगी। यह वृहदाकार पक्षी है जिसकी लम्बाई लगभग ४ फुट होती है। धड़ इसका आधा लम्बा होता है। रङ्ग श्वेत होता है, परन्तु शिशु महा हंस का रंग धूसर-सा ही होता है। धार्तराष्ट्र की अपेक्षा इसकी गर्दन छोटी होती है और उसकी तरह उतनी सीधी खड़ी भी नहीं

रहती, किन्तु बहुत अधिक मुड़ी नहीं रहती। धार्तराष्ट्र की भाँति इसकी चोंच में भी पीला धब्बा होता है किंतु उसकी सीमा नासिका के पीछे अर्द्धवृत्त रूप में होती है। धार्तराष्ट्र से विभिन्नता प्रकट करने का यह स्पष्ट लक्षण है।

बेविकी महाहंस की उड़ान धार्तराष्ट्र सदृश ही होती है। जब यह झुण्ड में उड़ रहा हो तो इसके पंखों को अधिक तीव्र गति से



महाहंस

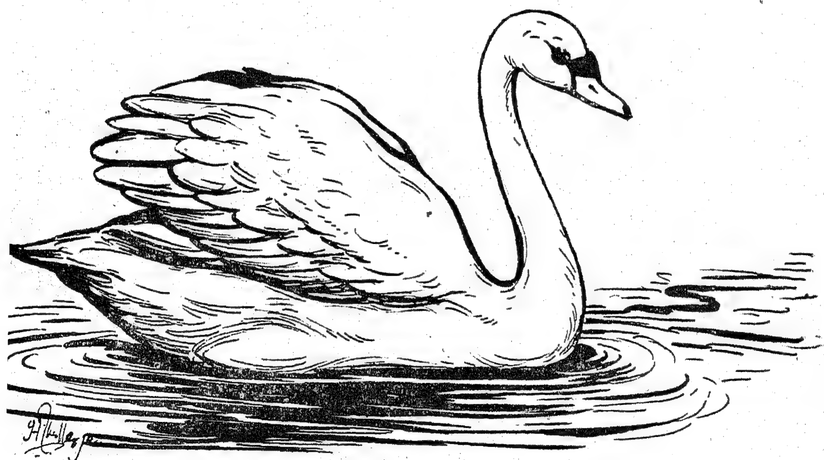
फटफटाते देखा जाता है। यह पानी के अन्दर या स्थल पर उगी घास या पौधों को अपना आहार बनाता है। शीत ऋतु में अन्य हंसों की भाँति इसकी भी मंडली देखी जाती है जिसमें जोड़े पृथक्-पृथक् पाये जाते हैं।

पाश्चात्य महाहंस यूरोप और एशिया के उत्तरी खुले जलखंडों में पाया जाता है। इसके जनन-क्षेत्र अत्यन्त शीत प्रधान स्थल ही हैं। यह टंड्रा के मैदान तथा ध्रुवीय क्षेत्र के द्वीपों तथा रूस और साइबेरिया की नदियों के मुहानों पर अंडे देता है। यह महाहंस शीत ऋतु में प्रवास कर दक्षिण में मध्य यूरोप, दक्षिणी रूस, उत्तर

में कैस्पियन तक तथा एशिया में दक्षिण में ईरान, उत्तरी भारत, और मध्य पश्चिमी चीन तक पहुँचता है। हालैंड में तो इनकी भारी संख्या देखी जाती है। किन्तु इंगलैंड आयरलैंड में अपेक्षाकृत कम होता है। पाकिस्तान में जकोबाबाद (सिन्ध) तथा मरदान (पश्चिमोत्तर प्रदेश) में पाया जा सका है।

पाक हंस (श्वेत महाहंस)

पाक हंस की लम्बाई लगभग पाँच फुट होती है जिसका आधा धड़ ही होता है। अतएव बृहदाकार पक्षी है। इसका शरीर १०-१५ सेर से लेकर कदाचित् २५ सेर तक होता है। अतएव उड़ाकू पक्षियों में हंस ही सबसे बोझिल कहा जा सकता है। इसका रंग श्वेत होता



पाक हंस

है। शिशु पाक हंस का रंग भूरामय होता है, किन्तु कभी श्वेत भी हो सकता है। यह अपनी गर्दन ऊँट की गर्दन की तरह आगे-पीछे

दुहरी मोड़ कर चलता या जल पर दौड़ता है। चोंच का रंग नारंगी तथा मूल भाग में काला होता है।

पंखों की मंद फटफटाहट से ही यह निश्चल रूप से तीव्र उड़ता है। इसका आहार जल या स्थल के घास-पात हैं किन्तु मछली, उभयचारी, कीड़े-मकोड़े, घोंघे, केकड़े आदि भी खाते देखा गया है इसलिए इसे पूर्ण शाकाहारी नहीं कहा जा सकता। यह कभी-कभी ही शब्द करते पाया जाता है, वह भी अधिकांशतः जनन-क्षेत्र में ही।

पाक हंस यूरोप और एशिया की धीमी नदियों, धीमे मुहानों, झीलों आदि में निवास करने वाला पक्षी है। इसका जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार है :—उत्तर में शटलैंड, डेनमार्क तथा स्वेडेन तक; पूर्व में जर्मनी (प्रशा), पोलैंड तथा रूस में ऊपरी वोल्गा की घाटी तथा साइबेरिया के कुछ भाग तक; पूर्व में आमूर नदी के आगे पैसिफिक महासागर तट तक; दक्षिण में मंगोलिया, तुर्किस्तान, उत्तरी ईरान, एशिया माइनर, रूमानिया, पोलैंड, उत्तरी जर्मनी, डेनमार्क और इंगलैंड तक; पश्चिम में आयरलैंड तक। पश्चिमी पाकिस्तान में यह अनेक स्थानों पर प्रवास करते पाया जा सका है।

नन्दीमुखी हंसक

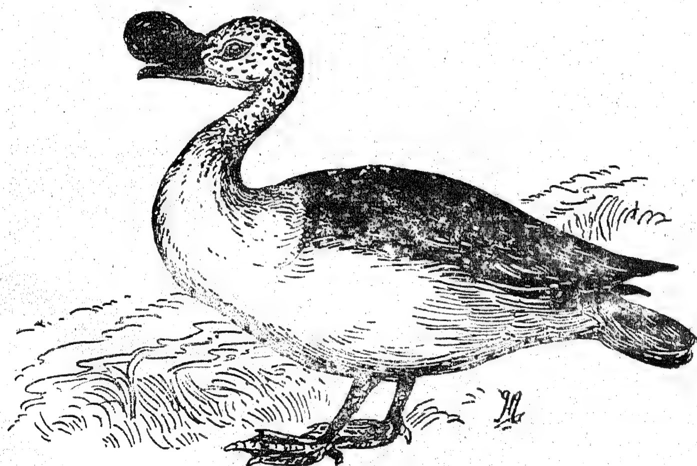
स्था० नाम—नकटा (हि०) नकवा (छोटा नागपुर) नाकी हंस (उड़िया)

जिस हंस के मुख या चोंच के आधार तल पर जामुन के फल की तरह एक गाँठ (गुटिका) उठी हो उसी को नन्दीमुखी नाम दिया जाता है। यह गुटिका जनन-ऋतु में विशेष परिवर्द्धित हो जाया करती है। भाव प्रकाश में लिखा है :—

स्थूला कठोरा वृत्ता च यस्यां चंचुः परिस्थिता।
गुटिका जम्बुसदृशी प्रोक्ता नन्दी मुखीति सा॥

नन्दीमुखी हंस का ऊर्ध्व तल काला होता है जिसमें नीले और हरे रंगों का मिश्रण होता है। सिर तथा गर्दन पर काली-काली बुँदकी होती है। उड़ान के समय पंख में धब्बा स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। विचित्र बात यह है कि नर में तो चोंच के आधार स्थल पर गुटिका होती है, परन्तु मादा इस गुटिका से रहित होती है और अपेक्षाकृत छोटे आकार की होती है किन्तु अन्य रंग-रूप नर के समान ही होता है। झीलों में इस पक्षी के छोटे-छोटे झुण्ड पाये जाते हैं।

घर्घर हंसक नामक एक दूसरा हंसक होता है जो पालतू बत्तख के बराबर ही होता है। इसके चंचु के आधार स्थल पर दोनों ओर



नन्दीमुखी हंसक

एक-एक नारंगी लाल धब्बे इसकी विशेष पहचान है। इसके शरीर

के पर हल्के और गहरे भूरे रंग के गंगा-जमुनी रूप के होते हैं। पंख पर हरी खड़ी पट्टी भी होती है।

नन्दीमुखी हंसक भारत भर में पाया जाता है। एक दूसरी नस्ल अफ्रीका में सहारा के दक्षिण तथा मडागास्कर में पायी जाती है।

हमारे देश में अधिकांश हंसक तो प्रवासी ही होते हैं। विदेशों में जन्म धारण कर वे ऋतु की विषमता से विवश होकर शीत ऋतु व्यतीत करने हमारे देश में आ पहुँचते हैं। कुछ थोड़े हंसक की जातियाँ ही ऐसी हैं जो हमारे देश में ही जन्म धारण कर स्थायी रूप से यहाँ ही निवास करती है। उन्हें भारतीय नागरिकता का पूर्ण अधिकारी समझना चाहिये। उन्हीं पूर्ण स्वेदेशी हंसकों में बेचारा नन्दीमुखी भी एक है।

जहाँ जल की प्रचुरता हो तथा हरियाली भी भरपूर हो, वहीं पर नन्दीमुखी हंसक अपना निवास बनाता है। जिन तालाबों, झीलों में यथेष्ट नरकुल तथा तल पर प्रवाहित वनस्पतियों का बाहुल्य हो, उन्हीं में नन्दीमुखी पाया जाता है। किनारों पर कहीं घास-पात उगी हो, कहीं उन्हीं के मध्य पानी जहाँ-तहाँ हो, वह स्थान इसे प्रिय लगता है। दो-चार या आठ-दस के झुंड तो प्रायः ही पाये जाते हैं परन्तु इससे दुगुनी-तिगुनी संख्या के भी झुंड पाये जाते हैं। जनन ऋतु में ये झुण्ड जोड़ों रूप में वितरित हो जाते हैं। जब जलपूरित धान के खेतों या आहार ग्रहण करने के क्षेत्रों से बसेरा लेने के स्थान तक आने-जाने या एक तालाब से ही दूसरे तालाब तक आहार की टोह में पक्षी की मंडली जाती है तो हम इन्हें सारसों या बकों की त्रिभुज के दो भुजों की तरह सुव्यवस्थित पंक्ति बना कर उड़ते नहीं देखते। ये अव्यवस्थित रूप में फैले उड़ते दिखाई पड़ते हैं। हो सकता है कि नन्दीमुखी हंसक जाति में अनुशासन, सैनिक व्यवस्था आदि की कुछ भी अनुप्रेरणा न मिली

हो किन्तु ये उड़ने में बलिष्ठ और वेगशील होते हैं। वे घनी डालों पर बैठते हैं और ऊपर से त्वरा भूमि पर आ धमकते या भूतल पर शान से चलते हैं।

नन्दीमुखी हंसक आंशिक रूप से ही मांसाहारी है। अन्यथा धान की फुनगी तथा दाने या अन्य वानस्पतिक पदार्थ ही अधिक खाता है। किन्तु मेढक या अन्य जल-जन्तु या कभी-कभी मछली भी खा लेता है। यह अपना घोंसला जलाशयों के तटवर्ती या पानी में ही खड़े वृक्षों के कोटरों में बनाता है।

नर नन्दी मुख का सिर तथा गर्दन श्वेत और पंख चमकते काले रंग से चित्रित होता है। शीर्ष, पश्चशीर्ष तथा पिछली गर्दन पर चितकबरापन समाप्त हो जाता है। निम्न ग्रीवा तथा पूर्ण अधोतल श्वेत होता है। कभी-कभी केशरिया धूसर रंग की पुट होती है। शेष ऊपरीतल तथा पंख काला और हरे नीले रंग की आभायुक्त होता है। पूँछ गहरी भूरी होती है। गर्दन के दोनों बगल एक काला धब्बा होता है।

अधो पुच्छ-आच्छादक के सामने कटि प्रदेश से उतरती एक काली पट्टी होती है। मादा में कालापन कम चमकीला होता है तथा पिछली पीठ तथा कटि प्रदेश का रंग धूसर भूरा होता है। गर्दन तथा सिर पर कालापन का अधिक प्रभाव होता है।

नन्दीमुख भारत भर में जल प्राप्त होने वाले स्थानों में पाया जाता है। पूर्वी या पश्चिमी पाकिस्तान में यह दुर्लभ ही है। आसाम में कच्चर, सिलहट तथा लुशाई में पाया जाता है।

इसका जननकाल जून से सितंबर तक है। किसी वृक्ष के कोटर में यह अपना घोंसला बनाता है। यह खोखले के नंगे पेंदे या लकड़ियों से बनाये घोंसले में अंडा देता है। किसी कगारे के छेद

या गिद्धों और महावकों के पुराने घोंसले भी प्रयुक्त करता है। आठ से बारह अंडे तक एक बार में देता है। कहीं-कहीं ४० या ४७ तक अंडे एक घोंसले में पाये जा सकते हैं।

श्वेत पक्ष वन हंसक

स्था० नाम—देव हंस (आसाम), हगरानी दावफ्लांतू (कच्चरी)

आकार :—पूरी लम्बाई—३० इञ्च, पंख—१६ इञ्च, पूँछ—५ से ७ इञ्च तक, चोंच—२¼ से २½ इञ्च तक, गुल्फ – २½ इञ्च से कुछ कम।

नन्दीमुखी हंसक (नकटा) के समान ही कुछ अन्य जातियों के पक्षी होते हैं। इन सब को नन्दीमुखी अनुवंश का कहते हैं। नन्दीमुखी जाति का तो स्पष्ट लक्षण यह होता है कि पङ्ख की लम्बाई १० इञ्च से कम होती है और चोंच के आधार स्थल पर माँस अर्बुद होता है किन्तु इस अनुवंश की अन्य जातियों प्रजातियों में एक तो पङ्ख १० इञ्च से बड़ा होता है, दूसरे चोंच के आधार पर माँस अर्बुद (माँस का उभाड़) नहीं होता। श्वेत पक्ष तथा पाटलोत्तमाँग नाम की जातियाँ ऐसे रूप की होती हैं। इन दोनों में चोंच की पूरी लम्बाई उसके आधार तल की चौड़ाई से कम से कम दूनी होती है। किन्तु इन दोनों में भी यह विभेद होता है कि श्वेत पक्षी का सिर पूर्णतः काला तथा श्वेत होता है। पाटलोत्तमाँग हंसक में अग्रग्रीवा तथा सिर का अधिकांश नर में गुलाबी तथा मादा में कुछ धूमिल होता है।

श्वेत पक्ष का प्रसार क्षेत्र पूर्वी आसाम तथा दक्षिणी बर्मा है। पश्चिम आसाम में बहुत कम मिलता है किन्तु ब्रह्मपुत्र के उत्तर कामरूप, गोआलपाड़ा, तेजपुर में कभी-कभी मिलता है। यह आसाम के अन्य स्थानों में लखीमपुर में प्रायः मिलता है, परन्तु

शिव सागर, नौगाँव और कच्चर में कभी-कभी दिखाई पड़ता है। ब्रह्मपुत्र के दक्षिण तो बहुत ही कम मिल सकता है।

इसका जनन-काल जून से अगस्त तक है। यह अत्यन्त सघन जङ्गलों का पक्षी है। जहाँ दलदल तथा जलखन्ड बीच-बीच में हों, उन जङ्गलों में पाया जाता है। यह छोटे झुंडों में रहता है किन्तु प्राय: अकेले या जोड़े रूप में ही पाया जाता है। यह तीव्र गति तथा प्रबल शक्ति से उड़ता, पानी पर तैरता तथा डुबकी भी लगाता है। भूमि पर भी भलीभाँति चलता है। इसका आहार दाने, अँकुर, कलियाँ, मछली, मेढक, कीड़े आदि हैं।

पाटलोत्तमांग हंसक

स्था० नाम—लाल सिरा, गुलाब लाल सिरा (हि०) सकनाल (बंग०) डमरार, डूमर (नेपाल की तराई, तिरहुत)

आकार—पूरी लंबाई—१४ इंच, पंख—१० से ११$\frac{१}{४}$ इंच तक, पूँछ—४ या ५ इंच, गुल्फ—१$\frac{३}{४}$ इंच से कम, चोंच—२ या २$\frac{१}{४}$ इंच,

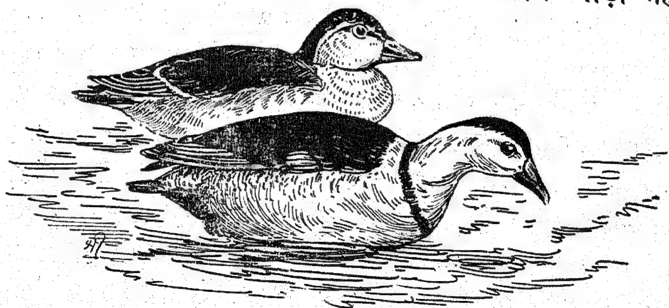
पाटलोत्तमाँग का सारा सिर तथा गर्दन उत्तम पाटल (गुलाब) पुष्प की तरह गुलाबी होती है। केवल हनु से एक रेखा उठ कर अग्रग्रीवा तक धीरे-धीरे चौड़ी बनी होती है जिसका रंग अधोतल तथा ऊर्ध्वतल के समान कलौंछ भूरा होता है। ऊपरीतल निम्न तल की अपेक्षा अधिक कलौंछ भूरा तथा चमकीला होता है। मादा में गुलाबी रंग फीका तथा थोड़े भाग में होता है। पीठ, पंख तथा अधोतल का भूरा रंग धूमिल होता है। हनु से गर्दन तक जाने वाली रेखा का या तो सर्वथा अभाव होता है या बहुत ही धुँधली होती है। सिर का गहरा गुलाबी रंग इस भाग में भी होता है।

इसका प्रसार अवध तथा नैपाल से आसाम तक, मनीपुर और हिमालय के अंचल में स्थित घने जंगलों में है। अन्य स्थानों में यह जहाँ-तहाँ ही मिलता है। पंजाब में रूपर तथा गुरदासपुर में यह पाया जा सका है।

यह घने जंगल में अंडे देता है। घास तथा शैवाल का घोंसला बनाता है। पानी के निकट झाड़ियों और घास के जंगलों में इसका घोंसला होता है, जहाँ मनुष्य की कभी पहुँच न हो। यह अत्यन्त लज्जालु होता है अतएव इसे देखने का बहुत कम अवसर मिल सका है। शेर और चीतों का शिकार करने के लिए जब हाथियों की पंक्ति घासों को रौंदती चलती है, तब यह संयोगवश दिखाई पड़ जाता है। इसका आहार वनस्पति तथा जीव दोनों ही है।

काणूक हंस (सवन)

काणूक हंस का आकार कबूतर से कुछ बड़ा किन्तु कौए से छोटा होता है। यह सबसे छोटे आकार का बत्तख है। इसके शरीर का अधिकांश श्वेत होता है। चोंच बत्तख के समान चौड़ी नहीं



काणूक हंस

होती। नर में ऊपरी भाग चमकीला भूरा, गले में काले रंग का पट्टा

तथा पंख पर श्वेत पट्टी होती है। उड़ान के समय पंखों की श्वेत किनारी प्रमुख रूप से दिखाई पड़ती हैं। मादा का रंग धूमिल, गला रंगीन पट्टे विहीन तथा पंख भी पट्टीहीन होता है। सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त समय में नर के गले का पट्टा लुप्त हो गया होता है। उसके तथा मादा के रंग में केवल पंख की पट्टी का अन्तर ही रह जाता है। ये झुंडों में नदियों तथा झीलों में पाये जाते हैं।

काणूक हंस भारत भर में पाया जाता है। केवल राजपूताने में नहीं पाया जाता। पूर्व की ओर यह फैलता हुआ सेलेबीज (पूर्वी द्वीप समूह) तक पाया जाता है। यह बारहमासी पक्षी है किन्तु स्थानीय रूप से स्थानान्तर कर सकता है।

यह बत्तख सारे भारत में अत्यधिक सुलभ तथा फैला पक्षी है। बारहमासी बत्तखों में यह सर्वाधिक प्रचलित है। यह उन सभी स्थानों में फैला पाया जाता है जहाँ ताल-तलैया, झील आदि में पानी हो तथा जलीय वनस्पति, नरकुल आदि हों। पानीभरे धान के खेतों, छोटे गड्ढों, खाइयों आदि में भी निर्वाह कर लेता है। नालियों की गन्दगी में भी इसे आहार मिल जाता है। इसके झुंड दस-पंद्रह तक के होते हैं किन्तु इससे बड़े झुंड भी पाये जाते हैं। यदि इसे प्रपीड़ित न किया जाय तो बड़ा पालतू बन जाता है। लोगों के निकट ही पानी में अपना आहार ढूँढ़ता घूमता फिरता रह सकता है। यदि तंग किया जाय तो आदमियों से दूर भागने लगता है। इसे पकड़ना कठिन हो जाता है।

यह उड़ने में तीव्र तथा पानी में डुबकी लगाने में भी कुशल होता है। उड़ते समय एक विचित्र तरह का शब्द करता रहता है। जंगली या बोये हुए धान के अंकुर तथा दाने या अन्य वानस्पतिक पदार्थ इसका आहार है। कीड़े-मकोड़े भी खा लेता है।

इसका सन्तानोत्पादन काल जुलाई से सितम्बर तक है। पानी

में या उसके निकट खड़े किसी वृक्ष के कोटर में यह अंडे देता है। उसमें या तो मामूली अस्तर कुछ घास, पर तथा कूड़ा-कबाड़ का होता है या बिल्कुल खाली होता है। साधारणतया ६ से १५ फुट ऊँचाई तक के कोटर में घोंसले बनाता है। परन्तु साठ-सत्तर फुट ऊँचाई पर भी इसका घोंसला पाया जा सका है। छः से बारह तक अंडे एक बार में देता है। अंडे उजले होते हैं। शिशु उड़ने योग्य होने पर घोंसले से नीचे ढकेल दिया जाता है। कुछ दूर तक तो वह ढेले की तरह गिरता है। परन्तु बाद में पंख फटफटा कर सँभल जाता है। यही उसका स्वयं उड़ने का प्रथम अवसर होता है।

चीन हंसक

आकार :—पंख—$6\frac{3}{4}$ से $7\frac{3}{4}$ इंच तक, चोंच—$1\frac{1}{4}$ इंच।

चीन हंसक को कारूक हंस के निकट की जाति कहा जाता है। ये उपहंसक अनुवंश की जातियाँ हैं। इनको कुछ बातों में समानता रखते पाया जाता है। हंसक की भाँति इनकी चोंच छोटी होती है। पंजे की अगली अंगुलियाँ ऐसी स्थिति में होती हैं कि ये भूमि पर भलीभाँति चल सकें। इन दोनों में विभेद स्पष्टतः यह है कि कारूक हंस के नर में शिखा नहीं होती तथा मुख्य पक्ष (प्राथमिक) में रुपहली धूसर किनारी नहीं होती। किन्तु चीन हंसक में सिर पर शिखा होती है तथा मुख्य पक्ष में रुपहली धूसर किनारी होती है।

चीन हंसक का प्रसार पूर्वी एशिया में है। यह मध्य तथा दक्षिणी चीन, फारमोसा और जापान में पाया जाता है। आसाम में भी यह पक्षी कभी-कभी पाया गया है।

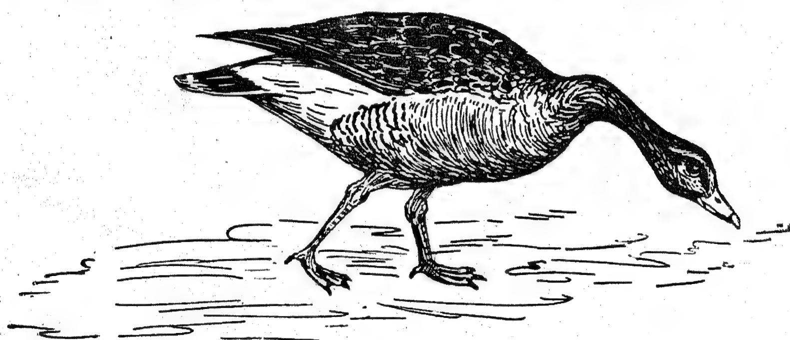
उत्तरी चीन में इसका जनन-काल मई-जून है। बनों में छोटे सोतों के तट पर खड़े वृक्षों के कोटर में यह अंडे देता है।

यह आधे दर्जन की संख्या में झुंड बनाये मिलता है। खेतों तथा गाँवों के निकट रहने वाले पक्षी पालतू से बन जाते हैं। किन्तु दूर के स्थानों के पक्षी जंगली ही रहते हैं। ये पानी में तैरते तो बहुत अच्छी तरह हैं, परन्तु डुबकी नहीं लगा सकते। दृढ़ता से उड़ान करते हैं तथा भूमि पर भलीभाँति चल भी लेते हैं।

कल हंस

स्था० नाम—सोना, करिया सोना, हंस, राजहंस, कलौक, खर हंस भागलपुर, राजहंस, धितराज (आसाम)

कल हंस की लम्बाई ३ फुट होती है। इसका दो-तिहाई भाग धड़ ही लम्बा होता है। इसका सिर बड़े आकार का होता है तथा उसका रंग शरीर के ही रंग का होता है। चोंच स्थूल तथा लम्बी होती है। वयस्क पक्षी की चोंच पूर्णतया नारंगी रंग की होती है।



कल हंस

केवल छोर पर कुछ हल्का रंग होता है। ऊपरी पंख का मुख्य भाग तथा पीठ का अग्रभाग धुँधला खाकी होता है; किन्तु उड़ान के समय

इन रंगों को नहीं देखा जा सकता। दुम श्वेत तथा छोर पर काली पट्टीयुक्त होती है। वक्षस्थल सपाट या चित्रित होता है, परन्तु उस पर पट्टियाँ नहीं होतीं। पैरों का रंग चटक गुलाबी होता है। शरीर भारी होने पर भी यह स्थिरतापूर्वक उड़ता है। जोड़े रूप से लेकर सहस्रों के झुंड तक में इसे उड़ता पाया जा सकता है। त्रिभुज की दो भुजाओं के आकार में इसकी उड़ती पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं।

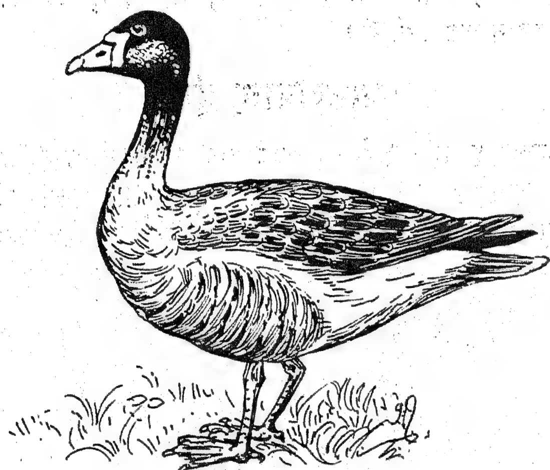
कल हंस का आहार घास-पात, जड़-मूल, दाने, झरबेरी आदि हैं। इसे उजाड़ मैदानों, उथले जल के स्थानों तथा तटीय घास के मैदानों में चरते देखा जाता है।

कल हंस पूर्वी गोलार्द्ध में पाया जाता है। इसके जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार हैं :—उत्तर में आइसलैंड, नार्वे, फिनलैंड ६०° उत्तर अक्षांश तक रूस के प्रदेश; दक्षिण में तिब्बत, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, काकेशश, रुमानिया, मेसिडोनिया, युगोस्लाविया, आस्ट्रिया, जेकोस्लोवाकिया, एल्ब के पूर्व उत्तरी जर्मनी तक; पश्चिम में हेब्रायड्स तक तथा पूर्व में मंचूरिया तक।

सितभाल हंस

सितभाल हंस का सिर श्वेत धब्बेयुक्त होता है अतएव इसे सित (श्वेत) भाल हंस कहा जाता है। इस पक्षी की लम्बाई ढाई फुट तक होती है। सिर बड़ा-सा होता है किन्तु कल हंस का सिर इतना बड़ा नहीं होता। इसके धड़ की लम्बाई कुल शरीर की लंबाई का दो-तृतीयांश होती है। इसके सिर तथा गर्दन का रंग पीठ से अधिक गहरे रंग का नहीं होता। अल्पवय सितभाल हंस की चोंच पीली होती है किन्तु वयस्क की चोंच गुलाबी रंग की होती है। ग्रीनलैंड में पाई जाने वाली एक जाति में वयस्क की चोंच नारंगी रंग की होती है। चोंच का अगला सिरा श्वेत होता है; किन्तु चोंच

इतनी लम्बी नहीं होती जितनी कल हंस की होती है। इसकी पूँछ श्वेत होती है जिसकी छोर पर काली चौड़ी पट्टी होती है। वक्षस्थल तथा उदर का रंग सादा होता है जिस पर काली पट्टियाँ भरी होती हैं। वयस्क सितभाल में चोंच के ऊपर मुख पर प्रमुख श्वेत पट्टी होती है किन्तु शिशु सितभाल में वह नहीं होती। उसमें चोंच के



सितभाल हंस

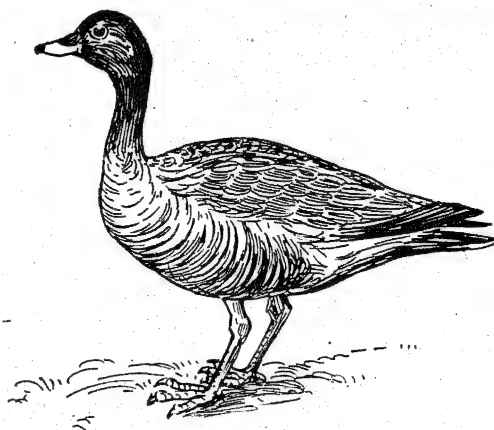
मूलभाग में घने पर निकले होते हैं। पैर का रंग नारंगी होता है। भूरे हंसों में सितभाल का रंग सबसे अधिक गहरा होता है। उड़ान में इसे त्रिभुज की दो भुजाओं या कोण की दो भुजाओं रूप में पंक्ति में देखा जाता है।

सितभाल ग्रीष्म में टुंड्रा के शीत मैदानों तथा शीत ऋतु में यूरोप, एशिया तथा उत्तरी अमेरिका के खारे पानी के उथले स्थलों, दलदलों या नदियों के मुहानों आदि के निकट पाया जाता है।

इसके जनन-क्षेत्र उत्तर के ध्रुवीय प्रदेश या विशेषतया उन क्षेत्रों की नदियों के मुहाने हैं। ग्रीनलैंड में जन्म धारण करने वाले सितभाल हंस शरद् ऋतु में आयरलैंड, पश्चिमी इंगलैंड या कुछ सेंटलारेंस की खाड़ी में जाते हैं। पूर्वीय गोलार्द्ध के उत्पन्न पूर्वी इंगलैंड, फ्रांस, भूमध्य सागर, एशिया माइनर, ईरान, हिमालय, दक्षिणी चीन तथा जापान तक जाते हैं।

पाटलपाद हंस

पाटलपाद हंस २ से २½ फीट तक लम्बा होता है जिसमें दो तिहाई धड़ ही होती है। इसके ऊपरी तल का रंग हल्का नीलापन युक्त भूरा रंग होता है, परन्तु सिर और गर्दन अपेक्षाकृत गहरे रंग के स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पाटलपाद की चोंच छोटी, हल्की



पाटलपाद हंस

तथा पतली होती है। उसका रंग काला बीच में गुलाबी पट्टी और

सिरे पर फिर काली कोर होती है। कभी-कभी पंख का अग्र भाग शेष भाग से धुँधला होता है। पूँछ श्वेत रंग की तथा सिरे के निकट गहरे रंग की पट्टीयुक्त होती है। इसके शरीर का अधोतल सादा होता है, परन्तु शिशु पक्षी में चित्रित होता है। चोंच के आधार में कभी पर निकले होते हैं जो स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ सकते। पैर गुलाबी रंग के होते हैं।

पाटलपाद घास-पात, दाने, जड़-मूल आदि खाता है। यह दिन को आहार चुगने के स्थान से लेकर रात को बसेरा लेने की भूमि तक आने-जाने में व्यवस्थित रूप से भारी झुण्डों में उड़ान करता है।

पाटलपाद हंस शीतदेशीय पक्षी है। शीतप्रधान ध्रुवीय देशों में ही जन्म धारण करता है। फलतः ग्रीनलैंड, आइसलैंड सरीखे घोर शीत के स्थान इसके जनन-क्षेत्र हैं, परन्तु उन क्षेत्रों में भी शीत ऋतु का आगमन होने पर यह अपेक्षाकृत कुछ शीतोष्ण स्थलों में प्रवास कर नदियों के मुहानों, उथले जल के स्थलों तथा पहाड़ी घाटियों के हरे-भरे भाग में उत्तरी सागर के तटवर्ती देशों में बेलजियम, हालैंड, जर्मनी आदि में पहुँचता है।

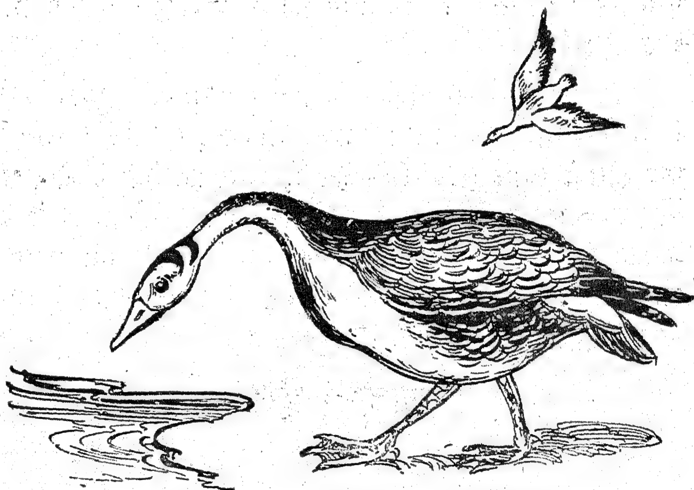
कादम्ब हंस

स्था० नाम—सवन हंस, करेयी हंस, राज हंस, बिरवा (हि०),
बोरनूरिया हंस, बोगा राजहंस (आसाम)

कादम्ब हंस का आकार पालतू बत्तख के बराबर होता है। इसके शरीर का रंग धूसर, भूरा मिश्रित तथा श्वेत होता है। इसका सिर तथा गर्दन का पार्श्व भाग श्वेत होता है। सिर के पीछे दो प्रमुख काले रंग की चौड़ी आड़ी पट्टियाँ होती हैं। इसके नर और मादा

समान होते हैं। इनके झुंड नदियों, झीलों या रबी के नये उगे खेतों में पाये जाते हैं। एक दूसरी जाति का भी हंस भारत में शीत ऋतु में बहुसंख्यक रूप में प्रवास करने आता है जिसे कल हंस (कारिया सोना) कहते हैं। वही हमारे पालतू बत्तखों का पूर्वज है। उसका रंग-रूप पालतू बतखों के भूरे रंग से मिलता है, परन्तु उसका धूसर कटि प्रदेश, श्वेत नख तथा बिल्कुल लाल-गुलाबी रंग की चोंच उसकी पहचान के अतिरिक्त साधन हैं। कल हंस झीलों के सूखे तट पर अधिकतर रहता है, परन्तु कादम्ब हंस पानी में ही रहता है।

कादम्ब हंस का प्रसार मध्य एशिया तथा पश्चिमी चीन से लेकर



कादम्ब हंस

लद्दाख और तिब्बत तक है। शीत ऋतु में प्रवास कर यह समस्त उत्तरी भारत तथा आसाम में फैल जाता है। कुछ विशेष दक्षिण के

भागों में तो वह दुर्लभ ही होता है, परन्तु भूले-भटके रूप में दो-एक को मैसूर तक पहुँचते पाया गया है।

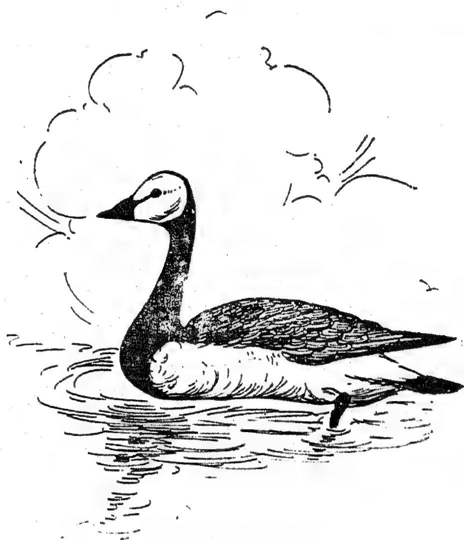
कादम्ब हंस अतिथि बन कर अक्टूबर के मध्य में आता है। मार्च तक अधिकांश पक्षी हमारे देश से बिदा होकर पुनः उत्तराखंड के अपने जनन-स्थान में चले जाते हैं। इसे १५-२० के झुंडों में देखा जाता है। ये दिन को किसी नदी के रेतीले या झील के तट पर या छिछले पानी में तैरते ही समय बिताते रहते हैं। सन्ध्या होने पर कोण की भुजाओं के आकार में बन कर इनका दल तत्परता से अपने आहार-क्षेत्र की ओर प्रयाण करता है। फसल खड़े खेत, झील के किनारे स्थित दलदली घास के मैदान या सिंचाई की नहरों में यह दल आहार की खोज में पहुँचा होता है। ये रबी की खेती के चना, गेहूँ आदि के नये अंकुर खाते हैं। इनकी भारी संख्या के इस कृत्य से खेती को भारी हानि पहुँचती है। ये दोपहर के पश्चात् से आहार में संलग्न होकर रात भर चारा चुगते रह कर सबेरा कर देते हैं। ये 'होंक' का शब्द कर उड़ते पाये जाते हैं। ये बड़े ही सजग पक्षी होते हैं। तनिक भी भय की आशंका होने पर अपनी मंडली को विचित्र शब्द से सूचित कर भाग उड़ते हैं।

लद्दाख में या अन्यत्र हजारों कादम्ब हंसों का उपनिवेश घोंसला बनाये मिलता है। १३ या १४ हजार फुट ऊँची झीलों के तट वे घोंसले बनाते हैं।

सितभाल रक्तोरस्क

सितभाल रक्तोरस्क की लम्बाई दो फुट होती होगी। नर का आकार मादा की अपेक्षा कुछ अधिक होता है। इसका सिर, गर्दन तथा वक्षस्थल काला होता है, किन्तु पूर्ण मुखाकृति तथा माथा श्वेत होता है। चोंच से एक काली रेखा आँख तक आई होती है। यह

हंस काले हंसों में सबसे अधिक चितकबरा होता है। इसके शरीर का ऊपरी तल भूरा होता है जो श्वेत और आड़ी स्फुट पट्टियों से युक्त होता है। इसका नितम्ब भाग श्वेत तथा पूँछ काली होती है।



सितभाल रक्तोरस्क

पंखों के छोर काले होते हैं। शरीर का अधोतल धुँधला खाकी किंतु पूँछ का अधोतल श्वेत होता है। चोंच छोटी और पतली होती है। इसका रंग काला होता है। ऊर्ध्व तथा अधोपाद काले होते हैं।

सितभाल रक्तोरस्क भारी झुण्डों में उड़ता है, परन्तु इसके झुंड सहस्रों की संख्या में न होते होंगे। यह तटीय स्थलों पर चारा चुगता है। व्याघात न पहुँचने पर रात को भी वहीं पड़ा रह सकता है। घास चरकर संतोष कर लेता है।

सितभाल रक्तोरस्क ध्रुव-जन्मा द्वीप ही कहा जा सकता है। उत्तरी पूर्वी ग्रीनलैंड, स्पिट्सबर्गेन, नोवा जेम्बिया आदि में उभाड़ रूप में निकले चट्टानी खंडों पर घोंसले बनाता है। शीत ऋतु में प्रवास कर दक्षिण के भागों में आता है, परन्तु शीतोष्ण कटिबन्धों के ही प्रदेशों में ही पहुँच पाता है। उत्तरी सागर, बाल्टिक सागर आदि के तटों पर इसे प्रवासी रूप में शीत ऋतु काट लेते पाया जाता है।

प्रख्याति शरालि

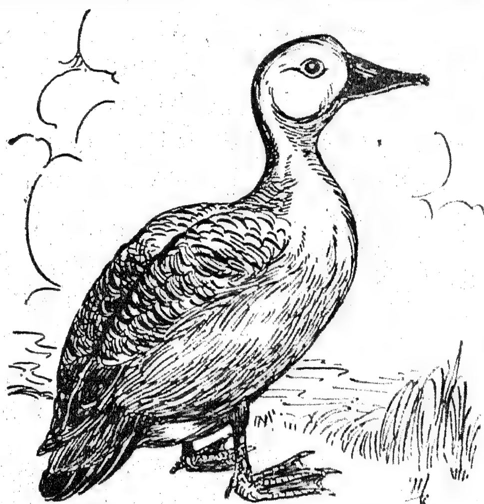
स्था० नाम—सिलही, सिलकाही (हि०) शरैल (वंग) हंसराली (उड़ि०) सोराली, होराली (आसाम)

शरालि का आकार पालतू बत्तख से छोटा होता है। यह एक बादामी रंग का छोटा बत्तख है किंतु समान आकार के किसी अन्य बत्तख से इसकी पहचान में धोखा होने की आशंका नहीं हो सकती। इसके नर और मादा समान होते हैं। अपनी मन्द उड़ान के समय यह सीटी बजाने-सी ध्वनि उत्पन्न करता है। जलीय वनस्पतियोंयुक्त तालों में इसके छोटे झुंड होते हैं।

वृहद् शरालि की पूँछ के ऊपरी आच्छादक पर बादामी के स्थान पर उजले-से होते हैं। यह भी जहाँ-तहाँ हमारे देश में फैला पाया जाता है। वृहद् शरालि साधारण शरालि के प्रसार-क्षेत्र के अतिरिक्त स्फुट क्षेत्रों में भी दूर-दूर देशों में पाया जाता है। अफ्रीका के कुछ भागों तथा उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में भी जहाँ-तहाँ मिलता है।

साधारण (प्रख्यात) शरालि भारत के समस्त मैदानी भागों में पाया जाता है। पूर्व में मलाया होकर यह थाईलैंड, हिन्द चीन, दक्षिणी चीन, सुमात्रा, जावा तथा बोर्नियो तक फैला मिलता है। यह बारहमासी पक्षी है, परन्तु स्थानीय रूप में स्थानान्तरित भी होता है।

साधारण शरालि सभी जलीय वनस्पतियों तथा तैरते हुए वनस्पतियोंयुक्त तालाबों में पाया जाता है। धान के जलभरे खेतों में भी मिलता है। यदि ऐसे स्थानों के मध्य कोई वृक्ष हो तो यह उस पर बैठने में आनन्द का अनुभव करता है। खुले तालाबों या नदियों को पसन्द नहीं करता। सूखा पड़ने या बाढ़ आने पर ये सुविधानुसार स्थान परिवर्तित कर देते हैं। इनके १०-१५ पक्षियों के



प्रख्यात शरालि

दल ही अधिकांश होते हैं, परन्तु जब-तब भारी झुंड भी देखे जाते हैं। यह कुछ साहसी पक्षी भी है। शिकारी के बन्दूक की ध्वनि सुन कर अन्य जल-पक्षियों के भाग खड़े होने पर भी यह अपने स्थल पर डटा मिलता है। शिकारी भी इनका मांस पसन्द नहीं करते। कदाचित यह मर्म इन पक्षियों को भी ज्ञात-सा है। इसी से ये निडर जान पड़ते हैं। इन पक्षियों का आहार केंचुए, घोंघे, मेढक, मछली

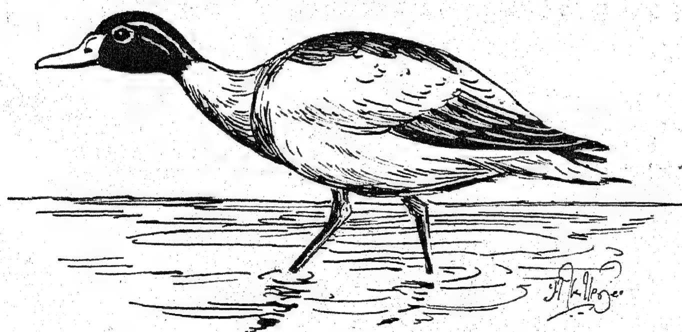
आदि हैं। घास की कोपलें, अन्न के दाने या पौधों के नवाङ्कुर भी इनके खाद्य पदार्थ हैं। ये भूमि पर भी चलते हैं और सुगमतया डुबकी भी लगा सकते हैं।

हमारे देश में शरालि का सन्तानोत्पादन-काल जून से अक्टूबर तक है। कुछ पक्षी तो झाड़ियों या नरकुलों की आड़ में भूमि पर ही घोंसले बनाते हैं किन्तु कुछ वृक्षों पर घोंसला रखते हैं। कोटरों या डालों के संधिस्थल पर घोंसले बने होते हैं। कौए, चील आदि का पुराना घोंसला भी उपयोग में लाता है। एक बार में ७ से १२ तक अंडे देता है। अंडों का रंग दूधिया होता है। मादा अंडे सेती है।

उपचक्र (सफेद सुरखाब)

स्था० नाम—शाह चकवा, सफेद सुरखाब, ररारिया (हि०)

उपचक्र की लम्बाई दो फुट होती है। उसमें धड़ की लम्बाई दो तिहाई होती है। यह हंस की ही समता में रूप रखने वाला बत्तख है। इसका सफेद सुरखाब या शाह चकवा नाम भी है।



उपचक्र

इसका रंग भव्य रूप की गंगा-जमुनी कहा जा सकता है जिसमें

लाल, गुलाबी, बादामी, हरापन युक्त काला तथा श्वेत रंगों का मेल होता है। गर्दन तथा सिर का रंग बिल्कुल हरा होता है। शरीर का रंग श्वेत तथा वक्षस्थल तथा अग्रपृष्ठ पर एक बादामी रंग की गोल पट्टी चारों ओर होती है। पीठ के पार्श्व भाग में काला रंग होता है। अधोतल में बीच में एक काली-सी रेखा होती है। उड़ान के समय भीतरी पंख के अधोतल का अगला अर्द्ध भाग श्वेत तथा बिल्कुल छोरों पर काली होती है। पूँछ का अधोतल बादामी होता है। चोंच का रंग लाल तथा ऊपरी और निचले पैरों का रंग गुलाबी होता है।

उपचक्र रेत या पंक में पड़े घोंघों का आहार करता है। मछली कीड़े-मकोड़े और केंकड़े और केचुएँ आदि भी या समुद्री वनस्पति, शैवाल, आदि भी आहार बनते हैं। इसे आग-आग शब्द करते हुए चारा चुगने में प्रवृत्त पाया जाता है।

उपचक्र का निवासस्थान शीतोष्ण कटिबन्ध में यूरोप तथा एशिया के समुद्रतट तथा नदियों के मुहाने, स्थल से घिरे समुद्र या नदियाँ हैं। इसका जनन-क्षेत्र निम्न है:—ब्रिटेन, उत्तरी सागर, नार्वे तथा बाल्टिक तट; भूमध्य सागर में सारडीनिया से दक्षिणी स्पेन तक के तट, दक्षिणी फ्रांस तथा अलजीरिया; तथा ईजियन सागर से लेकर काला सागर, ईराक, ईरान, कास्पियन, अरल सागर, तुर्किस्तान, तिब्बत, मंगोलिया, मंचूरिया तथा साइबेरिया तक के स्थल हैं।

चक्रवाक

चक्रवाक पालतू बत्तख के बराबर होता है। यह नारंगी भूरे रंग का बड़ा पक्षी है। इसके सिर तथा गर्दन का रंग धूमिल होता है। पंखों का रंग श्वेत काला तथा चमकीला हरा होता है, पूँछ काली

होती है। मादा बिल्कुल नर के समान होती है किन्तु उसकी गर्दन पर धुँधला पट्टा नहीं होता। उसका सिर भी अधिक धूमिल, लगभग श्वेत-सा होता है।

चक्रवाक का सन्तानोत्पादन-क्षेत्र दक्षिणी यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, मध्य एशिया, लद्दाख तथा तिब्बत है। शीत ऋतु में प्रवास कर यह सारे भारत में फैल जाता है। धुर दक्षिण भारत में दुर्लभ है।

यह अक्टूबर नवम्बर में भारत में आता है तथा मार्च अप्रैल तक वापस चला जाता है। यह सर्वत्र दिखाई तो पड़ता है, परन्तु बहुसंख्यक रूप में नहीं पाया जाता। यह प्राय: जोड़े रूप में रहता है, किन्तु १० या अधिक संख्या का झुंड भी होता है। खुली झीलों तथा बड़ी नदियों में यह पाया जाता है। प्रवास कर पहुँचने के समय हमारे देश में इसका बड़ा झुंड दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार ग्रीष्म के आगमन पर इनकी लौटानी यात्रा का समय आने के पूर्व भी बड़े झुंड दिखाई पड़ते हैं।

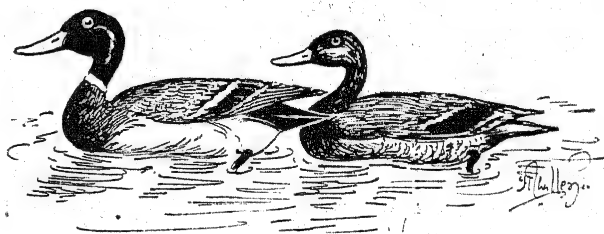
पानी में न रह कर ये रेतीले तटों या पंकमय गड्ढों में ही दिखाई पड़ते हैं। भूमि पर ये सुगमतया चल-फिर सकते हैं। दाना तथा वानस्पतिक पदार्थ चुगते रहते हैं, परन्तु ये सर्वभक्षी होते हैं। जलीय कीट, मछली, सरीसृप तक ही इनका आहार सीमित नहीं होता। शव भक्षण भी कर सकते हैं। इस कारण इनका मांस शिकारियों को ग्राह्य नहीं होता। इससे इनके प्राण भी बच जाते हैं फिर भी ये बड़े सजग रहते हैं। इनमें अन्य बत्तखों से बहुत पहले आशंका का आभास मिल जाता है और भाग खड़े होते हैं। ये भूमि पर रहते या उड़ते समय 'आँग' 'आँग' सा शब्द करते रहते हैं। चक्रवाक चकवी के वियोगजन्य कथानकों, वर्णनों, किंवदंतियों का आधार यही पक्षी है। ये लद्दाख या अन्य स्थानों में १२ या १६ हजार फुट ऊँचाई के झीलों के निकट घोंसले बनाते हैं। नर्म

परों को किसी चट्टान के अन्दर छेद या किसी जन्तु द्वारा निर्मित विवर में रख कर घोंसले का काम लेते हैं। जलाशय से बहुत दूर के स्थान में भी घोंसला बना पाया जाता है। ६ से १० तक अंडे एक बार में दिये जाते हैं।

नीलग्रीव हंसक

स्था० नाम—नील सिर, नीररुगी (हि०) लिल्ग, लिल्गाही (नेपाल), अमरोलिया हंस, वनारिया पतिहंस (आसाम)।

नीलग्रीव हंसक की लम्बाई दो फुट होती है। उसमें धड़ दो-तिहाई होता है। कुछ पालतू बत्तखों के समान ही इसे समझना चाहिए। कदाचित् इनसे ही उनकी उत्पत्ति हुई हो। भीतरी अग्र पंख का रंग भूरा होता है। मध्य पृष्ठीय भाग लाल, ऊपर की ओर काला तथा इधर-उधर श्वेत आड़ी पट्टियाँयुक्त होता है। ऊपरी तथा निचले पैर गुलाबी होते हैं। नर के सिर और गर्दन का रंग चमकीला हरा होता है जिसमें नीचे श्वेत रंग का कंठा दर्शनीय होता है। पीठ का रंग खाकी होता है। अधोतल में उदर का रंग खाकी किन्तु वक्ष-



नीलग्रीव हंसक

स्थल का रंग लाल भूरा होता है। चोंच का रंग हरा-पीला होता है। मादा का रंग चितकबरा भूरा होता है। मादा के चोंच का रंग

मटमैला हरा तथा किनारों पर नारंगी होता है। ग्रीष्म के अंतकाल में नर के शरीर में परों का रंग काला-सा बना दिखाई पड़ता है।

नीलग्रीव हंसक बराबर घास पात, जड़-मूल, झरबेरी, शैवाल और दाने आदि चुगता रहता है। उभयचारी जन्तु, छोटी मछलियाँ, कीड़े-मकोड़े, केकड़े, केंचुएँ आदि भी कुछ-कुछ खा लेता है।

इस पक्षी का जनन-स्थान संसार भर में ३०-३५ अंश अक्षांश से उत्तर के स्थानों में पाया जाता है। उत्तर की अन्तिम सीमा वनस्पति उग सकने तक की रेखा समझनी चाहिये किन्तु इन क्षेत्रों में कहीं इसका अभाव भी पाया जाता है। कुछ स्थानों में वनस्पति उत्पन्न होने की रेखा के भी उत्तर अपना जनन-स्थान बनाता है जिनमें अलास्का, ग्रीनलैंड, आइसलैंड और उत्तरी यूरोप के नाम लिये जा सकते हैं। दक्षिण जापान, अटलांटिक तटवर्ती उत्तरी अमेरिका के स्थल, उत्तरी पूर्वी ओंटेरियो, क्वेबेक, लेब्रडर और न्यूफाउंडलैंड में नहीं जन्म धारण करता। शीत ऋतु में कुछ पक्षी २०° अक्षांश तक के स्थानों में प्रवास करने चले जाते हैं, किन्तु पूर्वी द्वीप समूहों में तो इसे इससे भी अधिक दक्षिण बोर्नियो में भूमध्य रेखा तक पहुँचा देखा जाता है।

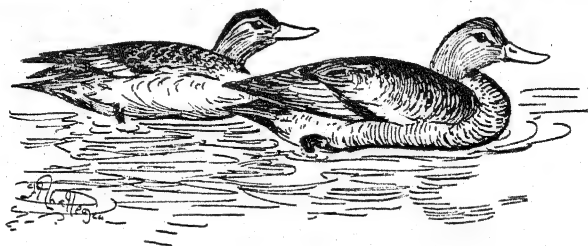
मलिन हंसक

स्था० नाम—भुअर, बैखुर, मिला (हि०) पेइंग हंस (वंग)
मैल (नेपाल) सरुमुगी हंस (आसाम)

मलिन हंसक की लम्बाई लगभग २० इंच होती है। धड़ दो-तिहाई लम्बा होता है। मादा की अपेक्षा नर भारी होता है। नर और मादा दोनों के ही सिर का रंग भूरा, आंतरिक अग्रपक्ष बादामी धब्बेयुक्त खाकी होता है। मध्य पृष्ठ का श्वेत रंग अगले भाग में

काली तथा पिछले भाग में गहरे रंग की पट्टियाँ होने से बीच में चौकोर उजला स्थल बनाता है। पंख कुछ नुकीले होते हैं। पैर के ऊपरी तथा निचले भाग धुँधले नारंगी पीले होते हैं। नर की चोंच खाकी होती है, वक्षस्थल पर द्वितीया के चंद्रमा के आकार की गहरे रंग की रेखा होती है। पीठ लाल, हरी, तथा नितंबस्थल और पूँछ का ऊपरी तल गहरे नीले काले होते हैं। पूँछ का निचला तल काला तथा निकटवर्ती अधोतल भूरा होता है। मादा की चोंच खाकी, तथा किनारों पर मादा नीलग्रीव से कुछ अधिक नारंगी रंग की होती है। वक्षस्थल गहरा भूरा होता है। अधोतल श्वेत होता है।

मलिन हंसक का आहार घास-पात, शैवाल, काई, दाने, चावल



मलिन हंसक

आदि हैं। उभयचारी जन्तु, मछली, कीड़े-मकोड़े, घोंघे, केंचुए आदि बहुत कम मात्रा में आहार का अंग बनाता है।

मलिन हंसक को पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों गोलार्द्धों में ३५°-६०° उत्तरी अक्षांश के मध्य स्थानों में जनन-क्षेत्र बनाते पाया जाता है। जनन-क्षेत्र की सीमा पुरानी दुनियाँ में निम्न हैं:—उत्तर में आइसलैंड, मध्य स्वेडेन तथा रूस और साइबेरिया तक; पूर्व में कमचटका और कमांडर द्वीप तक; दक्षिण में मंगोलिया, तुर्किस्तान, उत्तरी अफ़गानिस्तान, ईरान, काकेशस, काला सागर, यूनान के

अतिरिक्त शेष बालकन प्रायद्वीप, आस्ट्रेलिया, उत्तरी इटली, जेकोस्लोवाकिया, जर्मनी, हालैंड, दक्षिणी पूर्वी इंगलैंड, दक्षिणी फ्रांस के कुछ स्थल, उत्तरी पूर्वी अलजीरिया तथा दक्षिणी स्पेन तक; पश्चिम में आयरलैंड तक।

पुरानी दुनियाँ का मलिन हंसक शीत ऋतु में प्रवास कर अफ्रीका और एशिया में भूमध्य रेखा तक जाता है। परन्तु नयी दुनिया का मलिन हंसक केरीबियन सागर तक ही जाता है।

प्रियाशन हंसक

स्था० नाम—पियासन, पतारी, फरिया, छोटा लाल सिर

प्रियाशन हंसक की लम्बाई डेढ़ फीट होती है, उसमें धड़ दो तिहाई होता है। नर-मादा से कुछ भारी होता है। नर और मादा दोनों में परों का रंग भूरा, उदर का रंगश्वेत उड़ान के समय विशेष ध्यानाकर्षक होता है। इनकी चोंच अन्य सभी जल के तल पर तैरने वाले पक्षियों की अपेक्षा छोटी, हल्की और पतली होती है। इसका रंग नीला धूसर तथा सिरे पर काली धारीयुक्त होता है। नर के सिर का रंग बादामी तथा माथे और मुखाग्र का रंग पीला लाल होता है। वयस्क नर में आंतरिक अग्र पक्ष पर चौड़ा श्वेत धब्बा होता है। मध्य पृष्ठीय भाग हरा, ऊपर की ओर श्वेत तथा आगे-पीछे काली स्फुट पट्टियोंयुक्त होता है। पूँछ का अधोतल काला तथा धड़ का अधोतल श्वेत होता है। मादा का सिर गुलाबी लाल तथा भूरे रंग से चित्रित होता है। आंतरिक अग्रपक्ष धूसर भूरा, मध्य पृष्ठीय भाग धूमिल या हल्का हरा तथा आगे की ओर श्वेत पट्टी तथा पीछे की ओर दूसरी श्वेत पट्टीयुक्त होता है।

प्रियाशन हंसक प्रायः बड़े झुंडों के रूप में ही चारा चुगता है।

यह शैवाल, घास, काई आदि खाता है। कुछ मात्रा में मछली के अंडे, कीट, मकड़े, घोंघे और केचुए भी खा लेता है। मादा प्रायः "रक-रक" की टेर लगाये रहती है। नर की ध्वनि कुछ दूसरी होती है। वह "वीक-वीक" सा शब्द करता है।

प्रियाशन हंसक का जनन-क्षेत्र उत्तर प्रदेशों में यूरोप में ५०° अक्षांश तथा एशिया में ४०° अक्षांश तक है। उत्तर में आइसलैंड, टुंड्रा के मैदान तथा ध्रुवीय नदियों के मुहाने तक; पूर्व में कमचटका तक; दक्षिण में उत्तरी मंगोलिया, तुर्किस्तान, कास्पियन, काकेशश, ऊपरी वोल्गा, डान, नीपर, उत्तरी पोलैंड, जर्मनी, हालैंड, और इंगलैंड तक; पश्चिम में उत्तरी पूर्वी आयरलैंड तथा हेब्राइड्स तक। ग्रीनलैंड तथा सीरिया में भी जन्म लेता मिला है। शीत ऋतु में प्रवास कर भूमध्य रेखा तक पहुँचता है।

रोहिणीक हंसक

स्था० नाम—छोटा मुरगाबी, केर्रा, लोहिया केर्रा, पतारी, सौचुरुका (हि०), नरोयब, तुलसियाबिगरी (वंग), चिला हंस, पतारी हंस (आसाम)

रोहिणीक हंसक की लम्बाई लगभग १४ इंच होती है। उसमें तीन-चौथाई धड़ होता है। नर और मादा दोनों की चोंच तथा पैर का रंग खाकी, आंतरिक अग्रपक्ष का रंग भूरा होता है। मध्य पृष्ठीय भाग हरा और काला होता है। नर का सिर बादामी होता है। लाल किनारीयुक्त एक हरी पट्टी आँखों से लेकर गर्दन के पीछे तक होती है। पीठ का रंग खाकी होता है। खड़ी श्वेत पट्टियाँ काली रेखाओंयुक्त उसमें बनी होती हैं। वक्षस्थल पर प्रमुख रूप से गहरे रंग के छोटे-छोटे धब्बे होते हैं। उदर श्वेत होता है। पूंछ का अधो-

तल काला किन्तु किनारों पर प्रमुख लाल-पीले धब्बोंयुक्त होता है। मध्यपृष्ठीय भाग हरा, आगे की ओर लाल तथा पीछे की ओर काली किनारीयुक्त होता है। बगल में धुँधली श्वेत पट्टी होती है। मादा का सिर भूरा तथा आँख के ऊपर छोटी श्वेत पट्टी होती है। पीठ भूरी, अधोतल श्वेत तथा चित्रित भूरा होता है। मध्यपृष्ठीय भाग हरा, नीचे काला तथा आगे-पीछे श्वेत स्फुट पट्टियोंयुक्त होता है।

शैवाल, काई, घास आदि इसका आहार है किन्तु कुछ अंश में मृत मछली, मेंढक, कीड़े-मकोड़े, केकड़े, घोंघे और केचुए आदि भी खाता है।

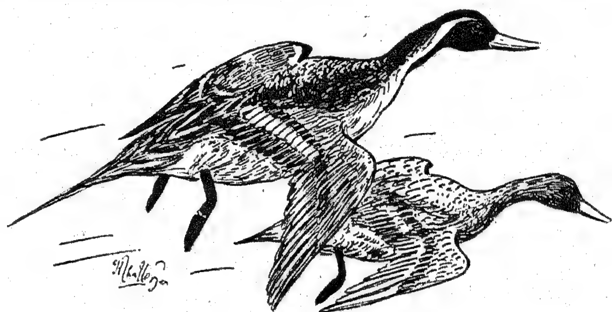
रोहिणीक हंसक का जनन-स्थल ३५°—७०° उत्तरी अक्षांशों के मध्य संसार भर में उथले जल के स्थानों, दलदलों आदि में है। पुरानी दुनिया में इसका जनन-क्षेत्र निम्न है :—

उत्तर में आइसलैंड, यूरोप और एशिया के वनस्पति उगने की रेखा तक के स्थल या कुछ स्थानों में उससे भी उत्तर; पूर्व में कमचटका, क्यूराइल, उत्तरी जापान, उत्तरी पूर्वी चीन तक; दक्षिण में तुर्किस्तान के उत्तर पूर्व तथा ट्रांसकास्पियन, काकेशश, रूमानिया, युगोस्लाविया, उत्तरी इटली, सारडीनिया और दक्षिणी फ्रान्स तक; पश्चिम में फ्रान्स और ब्रिटेन तक। कहीं-कहीं स्पेन, पुर्तगाल, एजोर द्वीप, दक्षिणी ग्रीनलैंड तथा स्पिट्सबर्गेन में इसका जनन क्षेत्र है। उत्तरी अमेरिका में एक अन्य उपजाति पाई जाती है। एशिया में अल्यूशियन द्वीप में भी एक दूसरी उपजाति होती है। पुरानी दुनियाँ का रोहिणीक पक्षी शीत ऋतु में प्रवास कर अफ्रीका और एशिया में भूमध्य रेखा तक पहुँचता है। नई दुनिया में केरीबियन सागर तक जाता है।

शंकु हंसक

स्था० नाम—संद, सिकंपर (हि०), दिगहंस, शोलोंचो (वंग०) नन्दा, ननजा, (उड़िया), दिगुंच (नेपाल), नेजल हंस, दिघल नेगी (आसाम)

शंकु हंसक की पूँछ की लम्बाई सम्मिलित करने पर इसकी कुल लम्बाई ढाई फुट के लगभग तक होती है। पूंछ को छोड़कर दो फुट से कम ही लम्बाई होती है जिसमें तीन-चौथाई धड़ ही होता है। शंकु हंसक की गर्दन लम्बी और पतली होती है। पंख तथा पुच्छ शंकुवत् (नोकीले) होते हैं। चोंच तथा पैरों का रंग धूसर होता है। मध्यपृष्ठीय भाग के पिछले अंश पर श्वेत पट्टी पंख की पिछली



शंकु हंसक

किनारी बनाता है। नर का सिर खैरा होता है जिसमें एक खड़ी श्वेत पट्टी गर्दन के नीचे तक जाकर नीचे के श्वेत वक्षस्थल में जा मिलती है। आंतरिक अग्र पक्ष तथा पिछला पक्ष धूसर मूषक वर्ण (चूहे के रंग का) होता है। मध्यपृष्ठीय पक्ष प्रमुख नहीं होता, उसका रंग हरा, गुलाबी रंग चित्रित तथा ऊपर की ओर काला, बाहरी भाग में लाल पट्टी तथा पिछले भाग में श्वेत पट्टीयुक्त होता है। उदर का

रंग श्वेत, पूँछ के निचले तल का रंग काला निकटवर्ती अधोतल में पीले धब्बे होते हैं। नर का साधारण रूप गहरा भूरा और श्वेत होता है। पानी पर तैरते समय उसका श्वेत वक्षस्थल दिखाई पड़ता है। मादा का सिर भूरा, आन्तरिक अग्र पक्ष गहरा भूरा तथा कुछ हरे रंगयुक्त होता है, पीछे श्वेत पट्टी होती है। उदर चितकबरा भूरा होता है।

शंकु हंसक अकेले या छोटे झुण्ड में चरने का स्वभाव रखता है। काई, घास या अन्य पौधे नोच खाता है। कुछ अंश में मेढक, मछली, कीट, केकड़े, घोंघे और केचुए भी खाता है। यह चुप्पा पक्षी है। जनन-ऋतु में ही शब्द करता है।

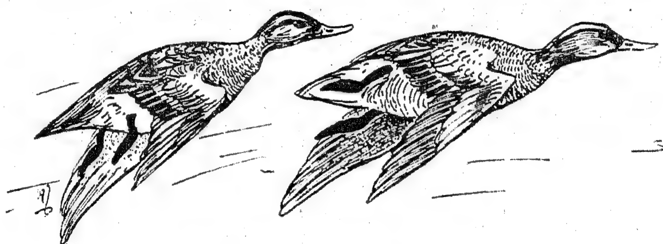
टुंड्रा तथा खेत या परती मैदान, जो खारी झीलों के निकट हों, तथा नदियों के मुहाने, स्थल से घिरे समुद्र में इसका निवास होता है। जनन-क्षेत्र निम्न रूप में हैं :—

यूरोप, अमेरिका तथा एशिया में ४०° उत्तर अक्षांश से दक्षिण संतान उत्पन्न नहीं करता। पूर्वी एशिया में तो ५०° उत्तर अक्षांश से भी नीचे जनन-क्षेत्र नहीं होता। उत्तर में आइसलैंड, समुद्र तटीय टुंड्रा के मैदान तथा रूसी ध्रुवीय नदियों के मुहाने तक; पूर्व में कमचटका तक; दक्षिण में आमूर नदी, बैकाल झील, एटलस पर्वत, तुर्किस्तान, कैस्पियन, काकेशस, काला सागर, रूमानिया, हंगेरी, आस्ट्रिया, जर्मनी तथा दक्षिणी फ्रान्स तक; पश्चिम में मध्य फ्रांस, इंगलैंड, आयरलैंड, फैरो, आइसलैंड तक; दक्षिणी स्पेन, क्यूराइल द्वीप समूह तथा स्पिट्सबर्गेन में भी जनन-क्षेत्र पाया जाता है। पुरानी दुनियाँ के शंकु हंसक शीत ऋतु में प्रवास कर अफ्रीका में अबीसीनिया तक पहुँचते हैं। भूमध्य रेखा तक भी पूर्वी द्वीप समूह में जाते हैं। नयी दुनियाँ में केरीबियन सागर तथा हवाई द्वीप तक।

नीलपक्ष (साचि हंसक)

स्था० नाम—चैतवा, खीरा, पतारी (हि०), गंग रोंयब, गिरिया, (वंग), घिला हंस (आसाम)

नीलपक्ष हंसक लगभग १५ इंच लम्बा होता है, उसका दो-तिहाई भाग धड़ ही होता है। रोहिणीक हंसक भी लगभग इसी आकार का होता है। नर और मादा दोनों में पैरों का रंग खाकी, पीठ का रंग गहरा भूरा तथा पूँछ के निचले तल का रंग श्वेत तथा भूरा होता है। नर की चोंच काली होती है। सिर चटकीला भूरा होता है जिसमें एक चौड़ी-सी श्वेत पट्टी आँख के ऊपर से ही मुड़कर गर्दन के पिछले भाग तक जाती है। वक्षस्थल सुनहला भूरा



नीलपक्ष हंसक

होता है जिसमें बीच-बीच दूज के चाँद या हँसिया के आकार की रेखाएँ तथा पार्श्व भागों में धुँधले खाकी रंग होने से सुन्दर दृश्य बन जाता है। आन्तरिक अग्र पक्ष नीला धूसर उल्लेखनीय होता है। मध्यपृष्ठीय भाग हरा, आगे-पीछे श्वेत स्फुट पट्टियों की शृंखला-युक्त होता है। पंख सिमटे होने पर अग्रपृष्ठ के परों से आच्छादित रहता है जिससे नीले, धूसर तथा श्वेत, काले रंग के चारखाने-सा रूप बनता है। मादा की चोंच हरी धूसर तथा सिर भूरा तथा श्वेत

होता है जिसमें मादा रोहिणीक की अपेक्षा अधिक स्पष्ट पट्टी आँखों के ऊपर होती है। मध्यपृष्ठीय भाग बहुत धुँधला हरा होता है। आगे-पीछे श्वेत पट्टियाँ होती हैं। पंख आच्छादित कर सकने वाले लम्बे पर अग्रपृष्ठ में नहीं होते।

शैवाल, काई आदि नीलपक्ष हंसक का भोजन है, परन्तु जंतुओं को कदाचित् अधिक मात्रा में अपना आहार बनाता है। यह मछली, मेढक, कीड़े-मकोड़े, केकड़े, घोंघे और केचुए खाता है।

नीलपक्ष हंसक नरकुल उगने वाले जलखंडों में, मैदानी भागों में पाया जाता है। इसके जनन-क्षेत्र निम्न हैं :—

उत्तर में उत्तरी पूर्वी इंगलैंड, उत्तरी स्वेडेन में ६१° अक्षांश तक, फिनलैंड में ६५° अक्षांश तक तथा श्वेत सागर, रूस के ध्रुवीय वृत्त तक; पूर्व में कमचटका तथा उत्तरी जापान तक; दक्षिण में मंचूरिया, मंगोलिया, तिब्बत, तुर्किस्तान, कास्पियन, काकेशस, उत्तरी एशिया माइनर, बलगारिया, अलबानिया, मध्य इटली, ट्यूनीशिया, सारडीनिया तथा पिरेनीज तक; पश्चिम में फ्रान्स, इंगलैंड तक। कुछ थोड़े अन्य बाहरी स्थानों में भी जनन-क्षेत्र है। शीत ऋतु में प्रवास कर यह अफ्रिका और एशिया में भूमध्य रेखा के आगे तक पहुँचता है। आस्ट्रेलिया में भी इसके पहुँचने का प्रमाण मिल सका है।

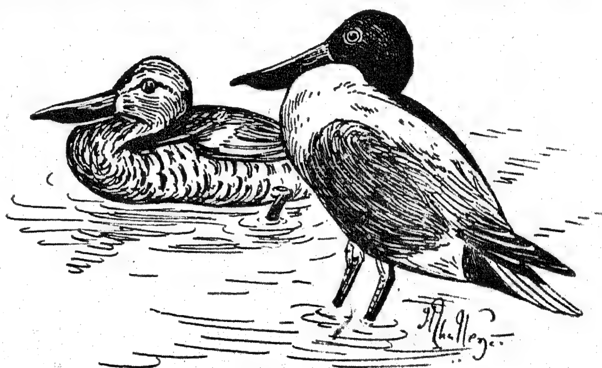
खात हंसक

स्था० नाम—तिडरी, पुनना, टोकर वाला, घिर्री (हि०) पंतमुखी (बंग०) धोबहर, सरकार, खिखेरिया संकर (नेपाल) खंतिया हंस नक, दुंगरा (आसाम)

खात हंसक की लम्बाई २० इंच होती है। धड़ की लम्बाई एक फुट होती है। नर और मादा दोनों ही बैठने पर गर्दन धड़ से दबा कर चोंच नीचे लटकाये रहते हैं तथा पूँछ ऊपर रहती है। इनकी

चोंच का आकार चम्मच समान और बड़ा होता है। आंतरिक अग्र पंख का रंग नीला तथा मध्यपृष्ठीय पक्ष का हरा होता है, जिसमें बाहर की ओर चौड़ी श्वेत पट्टी और पीछे की ओर पतली श्वेत पट्टी होती है। पैरों का रंग नारंगी होता है। नर बहुत चितकबरा होता है। उदर तथा पार्श्व भाग बादामी, चोंच काली, सिर पूर्णतया गहरा हरा, वक्षस्थल श्वेत, पीठ गहरी भूरी, होती है। मादा का उदर तथा वक्षस्थल भूरा और गुलाबी लाल होता है। चोंच हरी भूरी तथा किनारों पर पीली होती है। निम्न चंचु दल धूमिल नारंगी होता है।

खात हंसक का आहार काई, सेवार, घास, अलगी तथा घोंघे



खात हंसक

हैं। कीट, मछली, मेढकों के बच्चे, केकड़े और केंचुए आदि भी खाता है।

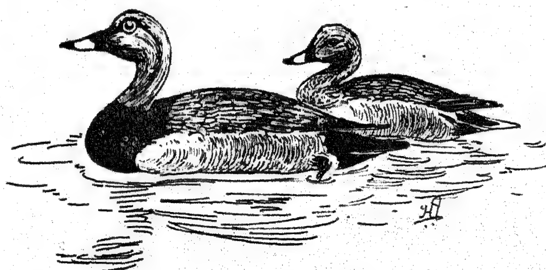
खात हंसक का जनन क्षेत्र निम्न रूप में विस्तृत है :—उत्तर में स्वेडेन, फिनलैंड, रूस, साइबेरिया में ७०° उत्तर अक्षांश तक; पूर्व में कोलाइमा नदी तथा समुद्रतटीय प्रदेश तक; दक्षिण में बैकाल,

अल्टाई, अरल, कैस्पियन, काकेशश, कालासागर, मेसिडोनिया, युगोस्लाविया. आस्ट्रिया, जर्मनी तथा फ्रांस तक, पश्चिम में आयरलैंड तक; अन्य स्थानों में कमचटका, उत्तरी जापान, उत्तरी मंगोलिया, एशिया माइनर, साइप्रस, स्विटजरलैंड, कार्सिका, दक्षिणी स्पेन में भी शायद जनन-क्षेत्र है। पुरानी दुनियाँ में भूमध्य रेखा से कुछ आगे तक यह पक्षी शीत ऋतु में प्रवास करने जाता है। नई दुनिया में कैरीबियन सागर तथा हवाई द्वीप तक जाता है।

रक्तचूड़ मज्जिका

स्था० नाम—लाल चोंच, लाल सिर (हि०) हेरो हंस, चोबरा हंस, (बंग०) देव हंस (आसाम)

इस पक्षी की लम्बाई डेढ़ फुट होती है। उसकी धड़ एक फुट लम्बी होती है। नर और मादा में से किसी के भी पंख पर श्वेत रंग नहीं होता। काली चोंच के ऊपर बीच भाग में हल्के नीले रंग की पट्टी सेतु की भाँति होती है। नर में यह पट्टी भाप से कुछ बड़ी होती है। नर का सिर चटक बादामी, वक्षस्थल काला, पृष्ठ तथा



रक्तचूड़ मज्जिका

पार्श्व भाग हल्के धूसर अधोतल श्वेत, नितंब भाग तथा पुच्छ का

अधोतल काला होता है। पैर धुँधले धूसर होते हैं। मादा प्रायः पूर्णतया मटमैले भूरे रंग की होती है। अधोतल कुछ हल्के रंग का होता है। कंठ और मुख पर विशेषतया चोंच के आधार-स्थल पर कुछ उजलापन होता है। पैरों का रंग हरापनयुक्त धूसर होता है। इनका आहार काई, सेवार, नरकुल, घास आदि तथा मेढक, कीट, केकड़े, घोंघे, केंचुए आदि हैं।

शीतोष्ण कटिबन्ध में नरकुल से भरे किन्तु मीठे पानी के खुले भंडारों, झीलों, जलाशयों, नदियाँ आदि में यह पक्षी निवास करता है। इसके जनन क्षेत्र की सीमा निम्न है :—

उत्तर में आर्कनी द्वीप, डेनमार्क, स्वेडेन का ध्रुवीय वृत्त तक का भाग, फिनलैंड का ६३° उत्तरी अक्षांश तक का भाग, रूस में श्वेत सागर, ड्वॉइना नदी, वोल्गा की ऊपरी घाटी तथा साइबेरिया का ६०° उत्तर अक्षांश तक के भाग तक; पूर्व में बैकाल झील तक; दक्षिण में उत्तरी पश्चिमी मंगोलिया, अलटाई, तुर्किस्तान, अरल, कास्पियन, काकेशस, कालासागर, रूमानिया, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया, जर्मनी, बेलजियम तथा इंगलैंड तक; पश्चिम में इंगलैंड के कुछ भागों तक; इनके अतिरिक्त अन्य स्थलों में कमचटका, ट्यूनिस, अलजीरिया, दक्षिण स्पेन, फ्रांस आदि में जनन-क्षेत्र पाया जाता है। शीत ऋतु में प्रवास कर यूरोप के भूमध्यसागर तक तथा एशिया में कर्क रेखा तक यह पक्षी पहुँचता है।

मल्लिकाक्ष मज्जिका

स्था० नाम—कुरन्चिया, बुडार मादा (हि०) लाल बिगड़ी, भूरी हंस (बंग०) काली मुरी (आसाम)

श्वेत नेत्र होने से इसका नाम मल्लिकाक्ष पड़ा है। मल्लिका पुष्प श्वेत होता है। इस पक्षी की लंबाई १६ इंच होती है जिसका

दो-तिहाई धड़ होता है। नर और मादा का लगभग समान रूप ही होता है। नर की आँख श्वेत होती है और मादा कुछ धूमिल होती है। ऊपरी तल, सिर तथा ऊपरी वक्षस्थल का रंग बादामी होता है। अधोवक्षस्थल तथा ऊपरी उदर का श्वेत रंग होता है। उदर का शेष भाग धूसर होता है। पूँछ का निम्न तल श्वेत इसकी विशेष पहचान है। उड़ान के समय पिछले पंख भाग में आर-पार एक वक्राकार श्वेत पट्टी ध्यान देने योग्य है। चोंच तथा पैरों का रंग काला होता है।

मल्लिकाक्ष नरकुल भरे तथा बन्द पानी में निवास करता है। इसका जनन-क्षेत्र पुरानी दुनियाँ के शीतोष्ण कटिबन्ध में निम्न रूप में है :—उत्तर में जर्मनी, पोलैंड तथा यूरोप और एशिया के ५५° उत्तर अक्षांश तक के भागों तक; पूर्व में यनीसी नदी तथा एटलस पर्वत तक; दक्षिण में ३५° उत्तर अक्षांश और हिमालय, सीरिया, भूमध्यसागर, अलजीरिया और मोरक्को तक; पश्चिम में स्पेन, पूर्वी फ्रांस, तथा मध्य जर्मनी तक, शीत ऋतु में प्रवास कर एशिया में कर्क रेखा (२३½ अंश उत्तर अक्षांश) तक यह जाता है। अफ्रीका में इससे भी दक्षिण नील तथा नाइजीरिया तक पहुँचता है।

कृष्णग्रीव मज्जिका

कृष्णग्रीव मज्जिका की गर्दन काले रंग की होती है। इसलिए कृष्णग्रीव विशेषण नाम में लगा है। इस पक्षी की लम्बाई डेढ़ फुट से तनिक अधिक (१९ इंच) होती है जिसमें दो तिहाई धड़ होता है। इसकी चोंच और पैर का रंग नीला खाकी होता है। चूड़ाल पद्म कंदाद की अपेक्षा इसकी चोंच विशेष चौड़ी होती है। पिछले पंख का समूचा भाग श्वेत पट्टी से घिरा होता है। पूँछ का अधोतल डुबारू की भाँति गहरे रंग का होता है। नर में सिर

हरापनयुक्त काला होता है, शिखा नहीं होती। वक्षस्थल, नितम्ब-स्थल तथा पूँछ का अधोतल काला होता है। उदर तथा पार्श्व भाग श्वेत होता है। पृष्ठ भाग धूमिल खाकी तथा कुछ स्लेटी रंग का होता है। वयस्क मादा का रंग मादा डुबारू (चूड़ाल पक्ष कंदाद या ब्रह्मपुत्री मज्जिका) की तरह ही होता है किंतु ग्रीष्म में उदर पर श्वेत रंग बना रहता है, पार्श्व भागों में ही भूरा रहता है। उसकी चोंच के आधार पर चारों ओर श्वेत पट्टी सदा ही रहती है। पूँछ का अधोभाग काला होता है।

कृष्णग्रीव मज्जिका का आहार घोंघे, कीट, केकड़े, केचुए, छोटी मछलियाँ तथा अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में सेवार, घास आदि है। यह प्रायः झुंडों में ही रह कर आहार ढूँढ़ता है। सहस्र तक एक झुंड में हो सकते हैं। लवणीय (खारे) या अलवणीय (मीठे) जल-भंडारों में यह छिछले या कुछ गहराई तक के जल में डूबता है। एक डुबकी में एक मिनट तक भीतर रह सकता है।

उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध में यह पक्षी रहता है। इसके जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार हैं :—उत्तर में आइसलैंड, लपलैंड और उत्तरी यूरोपीय रूस तथा साइबेरिया के ध्रुवीय तटों तक; पूर्व में साइ-बेरिया में अज्ञात दूरी तक, दक्षिण में यूरोपीय रूस तथा साइबेरिया में लगभग ६०° उत्तर अक्षांश तक तथा फिनलैंड, बाल्टिक द्वीप, स्वेडेन, नार्वे तथा फैरो तक; पश्चिम में फैरो और आइसलैंड तक। उत्तरी .पैसिफिक महासागर में कमचटका, कमांडर द्वीप, क्यूराइल द्वीप समूह में इसका जनन-क्षेत्र है। अमेरिका में भी शीत खंडों में जनन-क्षेत्र है। शीत ऋतु में प्रवास कर फ्रांस, पूर्वी भूमध्य सागर, काला सागर, ईरान की खाड़ी, जापान आदि तक जाता है। अमेरिका में केरेबियन समुद्र तक पहुँचता है।

ब्रह्म पुत्री मज्जिका (डुबारू)

स्था० नाम—डुबारू, अबलक, रहवारा (हि०) बम्हनियाँ हंस (आसाम)

ब्रह्म पुत्री मज्जिका या चूड़ाल पद्म कन्दाद को अबलक या डुबारू भी कहते हैं। इसके सिर पर शिखा (चूड़) होती है। इसकी लंबाई डेढ़ फुट से तनिक न्यून होती है। उसमें दो-तिहाई धड़ ही होती है। चोंच और पैरों का रंग नीला खाकी होता है। पिछले पंख के सारे भाग पर पूर्णतया श्वेत पट्टी होती है। पूँछ का अधोतल काला होता है। नर का पृष्ठ भाग तथा वक्षस्थल काला होता है। सिर के पीछे शिखा लटकी होती है। उदर तथा पार्श्व भाग श्वेत होता है। मादा ग्रीष्म में पूर्णतः गहरे भूरे रंग की रहती है। शीत ऋतु में उदर का रंग श्वेत हो जाता है। चोंच के आधार भाग में तनिक-सा श्वेत रंग होता है। पूँछ का अधोतल गहरा भूरा होता है। उसमें नर की अपेक्षा छोटी शिखा भी होती है जो दिखाई पड़ सकती है। ये पक्षी मंडलियों में रहते हैं। एक मंडली की संख्या सौ तक होती होगी। इन्हें दूर से देखने पर आगे-पीछे तो काला और बीच का भाग श्वेत दिखाई पड़ता है। ये पानी में पन्द्रह सेकंड तक डूबे रह सकते हैं। इसीलिये डुबारू नाम सार्थक है। इनका आहार मछली, मेढक तथा उनके अंडे, बच्चे, घोंघे तथा कीट आदि हैं। सेवार, घास, आदि भी खाते हैं।

इनके घोंसले जल के तट पर कुछ ढके स्थान में होते हैं। घास-पात से ये बनाये जाते हैं। नवजात डुबारू पीले और भूरे गहरे रंग का होता है। जन्म लेने के एक वर्ष के अन्दर ही इनमें वयस्कों की भाँति सिर के पीछे शिखा निकल आती है।

पुरानी दुनियाँ के शीतोष्ण कटिबन्ध के अलवण (मीठे) जल-भंडारों में यह पक्षी रहता है। जनन क्षेत्र निम्न प्रकार है :—उत्तर

में आइसलैंड तथा एशिया और योरप की वन उत्पत्ति रेखा तक; पूर्व में कमचटका, कमांडर तथा क्यूराइल द्वीप तथा जापान के उत्तरी द्वीप तक; दक्षिण में रूस के समुद्रतटीय प्रदेश, पूर्वी एशिया में ४५° उत्तरी अक्षांश तथा दक्षिणी पश्चिमी एशिया में तुर्किस्तान, अरल, कास्पियन, काकेशस, काला सागर और योरप में बलगारिया, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया, जर्मनी, उत्तरी फ्रांस, हालैंड, इंगलैंड तक; तथा पश्चिम में आयरलैंड, स्काटलैंड, फेरो द्वीप तथा आइसलैंड तक। सीरिया, साइप्रस आदि के कुछ स्थानों में भी जनन क्षेत्र है। शीत ऋतु में एशिया तथा अफ्रीका में भूमध्य रेखा तक यह प्रवास करने जाता है।

हिरण्याक्ष

स्वर्ण (हिरण्य) के समान चमकते पीत वर्ण नेत्र के पक्षी का नाम हिरण्याक्ष सर्वथा सार्थक है। इसका आकार कृष्णग्रीव मज्जिका तुल्य १६ इंच होता है। दो-तिहाई भाग धड़ होता है। इसकी चोंच छोटी होती है तथा सिर की रूपरेखा गोली न होकर कुछ-कुछ नोकीली-सी होती है। पृष्ठ भाग, नितंब भाग तथा पंखों का रंग काला होता है। पंख के आंतरिक अर्द्ध भाग पर लगभग पूर्णतया चौड़ी श्वेत पट्टी अगले छोरों तक होती है। शरीर तथा पूँछ का अधोतल श्वेत रंग का होता है। पैर नारंगी होते हैं। नर की चोंच गहरे रंग की होती है। सिर लाल हरे रंग युक्त काला होता है। आँख तथा चोंच के मध्य एक श्वेत धब्बा होता है। गर्दन तथा वक्षस्थल भली-भाँति श्वेत होता है। मादा की गहरे रंग की चोंच का सिरा पीला होता है। सिर का रंग कत्थई होता है। वयस्क मादा में श्वेत रंग का कंठ होता है। वक्षस्थल पर खाकी पट्टियाँ होती हैं। पार्श्व भाग भी खाकी होता है।

हिरण्याक्ष १०० तक के झुंड में रहता है। यह पानी में एक मिनट तक डूबा रह सकता है। तीन-चौथाई जन्तु तथा एक-चौथाई वनस्पति का आहार करता है।

पुरानी तथा नई दुनियाँ के उत्तरी कोणीय वृक्षों के बृहद् वनों के जलाशयों में यह जनन ऋतु में रहता है। शीत ऋतु में नदियों तथा समुद्र तट पर आ जाता है। जनन क्षेत्र निम्न प्रकार है:—

उत्तर में वन उत्पत्ति रेखा तक; पूर्व में बेरिंग का मुहाना, कमचटका तथा सखालीन तक; दक्षिण में एशिया में ४६° उत्तरी अक्षांश तक के स्थान तथा उत्तर योरोपीय रूस, उत्तरी पोलैंड, उत्तरी जर्मनी तक; पश्चिम में एल्ब नदी, स्वेडेन तथा नार्वे में ६१° उत्तर अक्षांश के उत्तर तक। डैन्यूब के मुहाने, मांटीनिग्रो, डेनमार्क, आइसलैंड आदि में भी जनन क्षेत्र हैं। अमेरिका में दूसरी उपजाति ऐसे ही क्षेत्रों में रहती है। शीत ऋतु में प्रवास कर यह पक्षी एशिया में कर्क रेखा तक तथा योरप में भूमध्य सागर तक पहुँचता है।

लंबपुच्छ हंसक

लम्बपुच्छ हंसक अपने आकार-प्रकार के कारण आकर्षक पक्षी है। दुम बहुत बड़ी होने से ही इसका नाम लम्बपुच्छक रक्खा गया। नर की लम्बाई १६ या १७ इञ्च होती है, परन्तु दुम के साथ तो लगभग २१ इञ्च हो जाती है। मादा का शरीर बिना दुम के लगभग १६ इञ्च लम्बा होता है। इस पक्षी का सिर छोटा और प्राय: उजला-सा होता है। माथा अत्यधिक ढालू होता है। चोंच छोटी होती है। पंखों पर श्वेत रङ्ग का अभाव होता है। अधोतल तथा पार्श्व श्वेत होता है। दुम विशेष पतली नोकीली होती है। नर गहरा भूरा और श्वेत होता है। उसकी चोंच नारंगी या गुलाबी

रङ्ग की होती है। उसका आधार स्थल तथा छोर दोनों ही काले होते हैं। इसका रङ्ग ग्रीष्म में कुछ और शीत में कुछ दूसरा ही रहता है। शीत ऋतु में श्वेत रङ्ग होता है। गर्दन पर गहरा भूरा धब्बा, वक्षस्थल पर पट्टी, और पृष्ठ भाग तथा पंखों पर मध्य में रेखा होती है। मुख का रङ्ग खाकी होता है। ग्रीष्म में श्वेत का स्थान भूरा रङ्ग ले लेता है, केवल उदर, पूँछ के अधोतल या कभी-कभी सिर के पीछे यह रङ्ग नहीं बदला होता। मादा की चोंच कालापन युक्त रङ्ग की होती है। सिर श्वेत होता है, शीर्ष पर भूरा तथा पार्श्व में भी कुछ भूरा होता है। पीठ भूरी, अधोतल श्वेत होता है पर वक्षस्थल पर भूरी पट्टी होती है। दुम नर की अपेक्षा अधिक छोटी होती है।

लम्बपुच्छ हंसक अधिक गहराई तक पानी में डूब सकते हैं। डेढ़ मिनट तक भीतर ही रह सकते हैं। अधिकांशतः जन्तुओं को ही आहार बनाते हैं। केकड़े, घोंघे, मछली, कीट, केंचुए आदि या कुछ घास-पात, सेवार आदि आहार बनाते हैं।

ध्रुवीय तथा उपध्रुवीय स्थलों की झीलों में तथा समुद्र तट पर यह पक्षी रहता है। जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार है:—ध्रुवीय क्षेत्र में घिरे समुद्रों या झीलों में यह सन्तानोत्पादन करता है। इस क्षेत्र का विस्तार दक्षिण में ६०° उत्तर अक्षांश तक नार्वे का भाग, उत्तरी स्वेडेन, फिनलैंड, श्वेत सागर साइबेरिया की नदियों के मुहाने तथा द्वीप, आदि तक है। पेसिफिक महासागर तटों में कमचटका तथा कमांडर द्वीप तक और अल्यूशियन द्वीप तथा ध्रुवीय अमेरिका के समुद्र तटों, नदियों के मुहानों तथा द्वीपों तक तथा ग्रीनलैंड, आइसलैंड आदि। शीत ऋतु में यह उत्तर सागर, बाल्टिक सागर, काला सागर, कास्पियन तथा अरल सागर में प्रवास करता है।

कारण्डव, सितोदर कारंड

कारण्डव संस्कृत का प्राचीन शब्द है। हंसों के भेद बताते हुए मदनपाल निघंटु में उल्लेख है :—

मलिनैः कलहंसस्तु पीतैः कादम्ब उच्यते।
कारण्डवः प्लवो मद्गुर्वरटा हंसपोषितः ॥

अर्थात् मलीन रंग कलहंस होता है, पीतवर्ण का कादम्ब होता है तथा कारण्डव, प्लव, मद्गु, वरटा नाम हंसिनियों के हैं।

हंसिनी कहने से यहाँ छोटे हंसक का ही अभिप्राय है। आज कारण्डव नाम से हम जिस बत्तख (हंसक) को पुकारना चाहते हैं उसके नर की लंबाई २६ इंच और मादा की लंबाई २३ इंच होती है। दो-तिहाई धड़ होती है। इनकी चोंच आरीनुमा होती है। नर चितकबरा होता है। सिर का रंग गहरा हरा होता है। कोई शिखा नहीं होती। पैर तथा चोंच का रंग लाल होता है। पीठ काली, वक्षस्थल, पार्श्व भाग तथा अधोतल कुछ गुलाबी मिश्रित श्वेत रंग के होते हैं। नितंब स्थल तथा पूँछ खाकी होती है। आन्तरिक पंख का अगला छोर खाकी होता है। उसके पीछे बिल्कुल श्वेत भाग ही होता है जो पार्श्व भाग के श्वेत रंग में जा मिला होता है। मादा का रंग भूरा, खाकी तथा श्वेत होता है। गर्दन तथा सिर का रंग बादामी होता है। सिर के पीछे दोहरी चोटी निकली होती है। हनु तथा ऊपरी कंठ श्वेत होता है। चोंच तथा पैर धुँधले लाल, पीठ तथा पार्श्व भाग खाकी होते हैं। गर्दन में जहाँ बादामी रंग होता है वहाँ पीठ की ओर यह बिल्कुल बदला ही खाकी रंग होता है। वक्ष-स्थल तथा अधोभाग पीले गुलाबी होते हैं। आन्तरिक पंख का अगला अर्द्ध भाग खाकी तथा पिछला अर्द्ध भाग श्वेत होता है।

कारंडव पानी के अन्दर दो मिनट तक डूबा रह सकता है।

अपने पैर और पंखों का उपयोग डूबने में करता है। इसका आहार विशेषतया मछली है। केकड़े, कीट, केचुए, मेढक और कुछ वनस्पति भी खाता है। पानी के निकट भूमि या वृक्षों के कोटर में इसके घोंसले बनते हैं।

शीतोष्ण ध्रुवीय क्षेत्र के वनों तथा नदियों में कारंडव निवास करता है। इसका जनन क्षेत्र वन उत्पत्ति-रेखा या उसके परे तक होता है। जनन क्षेत्र का विस्तार निम्न प्रकार है :—उत्तर में लैपलैंड तथा नोवा जेम्बिया से लेकर साइबेरिया होकर ध्रुवीय वृत्त तक; पूर्व में कमचटका, कमांडर द्वीप तथा क्यूराइबल द्वीप तक; दक्षिण में रूसी एशिया में पश्चिमी अरलसागर तक। तथा उत्तरी पोलैंड, उत्तरी जर्मनी, उत्तरी ब्रिटेन तक; पश्चिम में आइसलैंड तक। एक उपजाति मध्य एशिया में जन्म धारण करती है। अमेरिकन उपजाति अलास्का, कनाडा तथा न्यूफाउंडलैंड में जन्म धारण करती है। एशिया की उपजाति शीत ऋतु में कर्क रेखा से अधिक दक्षिण प्रवास करने नहीं जाती।

रक्तवक्षस कारण्ड

वक्षस्थल का रंग लाल होने से रक्तवक्षस विशेषण युक्त नाम है। परन्तु यह कारंडव से भिन्न ही जाति है। इस पक्षी का नर २३ इंच लंबा और मादा २१ इंच लंबी होती है। धड़ की लंबाई दो-तिहाई से कुछ कम होती है। नर का शरीर मादा से भारी होता है। इनकी चोंच आरीनुमा होती है। नर चितकबरा होता है। सिर का रंग गहरा हरा होता है तथा दो लटों की चोटी भी पीछे लटकी होती है। ऊपरी चोटी धरातल के समानान्तर-सी होती है, परन्तु निचली चोटी नीचे की ओर लटकी होती है। चोंच तथा पैरों का रंग लाल, पीठ तथा नितंब स्थल का रंग बारीकी से पेंसिल द्वारा

रंगे रूप में धुँधला काला तथा श्वेत होता है। वह खाकी रंग-सा प्रतीत होता है। पूँछ खाकी भूरी तथा श्वेत रंग से चित्रित होती है। वक्षस्थल बादामी होता है। उसे एक श्वेत रंग का कंठा मुख के रंग से पृथक् करता है। अधोतल श्वेत तथा पार्श्व भाग खाकी होते हैं। अग्रवक्ष काला होता है। उसके पीछे भीतरी आधे पंख का अधिकांश श्वेत धब्बे युक्त होता है। वह धब्बा पार्श्व भागों तथा पंख के सामने तक फैला होता है। इस धब्बे के बीच दो काली पट्टियाँ होती हैं। मादा की चोटी लगभग आड़ी होती है। वह गर्दन के नीचे नहीं लटकी होती। इसका रंग भूरा खाकी तथा श्वेत होता है किन्तु सिर का बादामी रंग गर्दन पर से हल्का होता हुआ शरीर के खाकी रंग में मिल जाता है। हनु तथा कंठ कुछ अस्पष्ट श्वेत धब्बेयुक्त होते हैं। उड़ान में पंख में आर-पार तक काली पट्टी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

रक्तवक्षस कारंड दो मिनट तक पानी में डूबा रह सकता है। पैरों तथा पंख का प्रयोग डूबने में करता है। इसके मुख्य आहार मछली है। केकड़े, कीड़े, केचुए, घोंघे आदि भी खाता है। वनस्पति नहीं खाता।

रक्तवक्षस का जनन क्षेत्र उत्तरी शीतोष्ण ध्रुवीय नदियों तथा बन्द समुद्रों में है। जनन-क्षेत्र का विस्तार निम्न प्रकार है:— उत्तर में लैपलैंड, नोवा जेम्बिया तथा योरोपीय रूस और साइबेरिया की नदियों तक; दक्षिण में आयरलैंड, स्काटलैंड, हालैंड, उत्तरी जर्मनी, पोलैंड, योरोपीय रूस में ५८° उत्तरी अक्षांश तक तथा एशिया में ५०° उत्तरी अक्षांश तक तथा रूस के सीमान्त प्रदेश, सखालीन, उत्तरी क्यूराइल, कमचटका, कमांडर द्वीप तक। योरप में यह शीत ऋतु में उत्तरी पश्चिमी अफ्रीका तथा भूमध्यसागर तक तथा एशिया में कर्क रेखा तक प्रवास करने आता है। अमेरिका

में भी शीत खंडों में जन्म लेकर मेक्सिको की खाड़ी तक प्रवास करता है।

श्वेत कारण्डव (पाश्चात्य निमज्जक)

श्वेत कारण्डव की लम्बाई १६ इंच होती है। दो-तिहाई धड़ की लंबाई होती है। चोंच आरानुमा होती है, परन्तु इस प्रकार की चोंच वाले हंसकों में यह सबसे छोटा आकार रखने वाला पक्षी है। चोंच का आकार छोटा तथा रंग खाकी होता है। पैर भी खाकी होते हैं। नर का रंग श्वेत और काला होता है। श्वेत मुख पर नेत्र और चोंच के मध्य एक बड़े आकार का काला धब्बा होता है। शिखा का मध्य भाग काला होता है। पार्श्व भाग में काली पट्टी होती है। पूँछ खाकी होती है। पृष्ठ का मध्य भाग तथा पंख काले रंग के होते हैं। अग्रपक्ष के आन्तरिक अर्द्ध भाग के अधिकांश पर श्वेत धब्बा होता है। मादा का सिर बादामी होता है तथा छोटी शिखा होती है। हनु, कंठ तथा कपोलों का रंग श्वेत होता है। ऊपरी तल खाकी, पंख खाकी काला तथा आन्तरिक अर्द्ध भाग पर नर की अपेक्षा छोटा श्वेत धब्बे युक्त होता है। शिशु श्वेत कारण्डव का रूप-रंग मादा-सा प्रतीत होता है।

श्वेत कारण्डव की उड़ान अत्यधिक या कभी-कभी तो विस्मय-जनक रूप में तीव्र वेग की होती है। यह पानी पर से सीधे वायु में उठकर उड़ जाता है। इसका आहार मुख्यतः अनेक प्रकार की मछलियाँ हैं, किन्तु केकड़े, उभयचारी कीट, घोंघों तथा कुछ अंश में वनस्पति भी खाता है। यह छोटे-छोटे झुण्डों में आहार खोजता रहता है। लवणीय (खारे) तथा अलवणीय (मीठे) जल में डुबकी मारकर आहार खोजता है। डुबकी मारने में पैरों की या कभी-कभी

पंखों की भी सहायता लेता है। यह ३/४ मिनट तक पानी में डूबा रह सकता है।

श्वेत कारण्डव का निवास स्थल उत्तरी शीतोष्ण कटिबन्ध के वन्य जल भंडारों में होता है। शीत ऋतु में कुछ अधिक खुले स्थान के जल भण्डारों तथा रक्षित समुद्रतटों में चला आता है। जनन क्षेत्र निम्न प्रकार है :—लैपलैंड, योरोपीय रूस के दक्षिणी भागों को छोड़कर शेष रूस में वन-उत्पत्ति रेखा तक तथा पूर्व में पैसिफिक महासागर तक। रूमानिया और उत्तरी बलगारिया में भी जन्म धारण करता है। योरप में जन्म धारण करने वाले श्वेत कारण्डव भूमध्यसागर तक तथा एशिया के पक्षी ३०° उत्तरी अक्षांश के स्थानों तक शीत ऋतु में प्रवास करने आते हैं। इस सीमा के अंदर समुद्रों तथा समुद्रतटों में उनका प्रवास काल कटता है।



वंजुल गण (वंजुल वंश)

वृहद् कंठवाल वंजुल

वृहद् कंठवाल वंजुल की लम्बाई डेढ़ फुट होती है जिसका दो-तिहाई भाग धड़ की लंबाई होती है। इसके नर और मादा दोनों के ही रूप एक समान होते हैं। गर्दन लम्बी तथा पतली होती है। आगे की ओर उसका श्वेत रङ्ग चमकता रहता है। गर्दन सीधे ऊपर खड़ी रहती है। चोंच लम्बी तथा रक्तिम वर्ण होती है। कान की उभड़ी दीवाल तथा शीर्ष भी रक्तिम वर्ण होते हैं। गर्दन का पिछला भाग तथा ऊर्ध्व तल खाकी भूरा, अधोतल श्वेत तथा पैर हरे होते हैं। पैर की अँगुलियाँ फाँक रूप में होती हैं। उनका रङ्ग हरा-पीला होता है। पङ्ख मटमैले रङ्ग के होते हैं जिन पर दो श्वेत धब्बे होते हैं। इनमें एक धब्बा त्रिकोण होता है जो अग्रवक्ष के आन्तरिक अर्द्ध भाग को पूर्णतः आच्छादित रखता है। तथा धीरे-धीरे भीतरी छोर की ओर पतला होकर पिछले पङ्ख के छोर तक जा पहुँचता है। दूसरा श्वेत धब्बा चौकोर होता है जो पिछले पङ्ख के भीतरी अर्द्ध भाग में होता है। ग्रीष्म में चोंच लाल, शीर्ष तथा शिखा लगभग काली होती है। मुख के पार्श्व भाग पर बादामी रङ्ग के रोमों की लट झालर की तरह गर्दन पर लटकी रहती है। शीत ऋतु में चोंच का रङ्ग गुलाबी होता है तथा कान की उभड़ी दीवाल तथा शिखा कुछ छोटे आकार की हो जाती हैं। सिर का ऊपरी भाग चपटा और नोकीला प्रतीत होने लगता है। काले से

शीर्ष तथा नेत्र के मध्य श्वेत रेखा होती है। पीठ अधिक खाकी होती है।

वृहद् कंठवाल वंजुल का आहार अधिकांशतः कीड़े और मछली हैं। केकड़े, घोंघे, मेढक, सेवार, वनस्पति आदि भी खाता है। यह जोड़े या छोटे-छोटे झुण्ड रूप से जलीय आहार ढूँढ़ता रहता है। पानी में डूब डूबकर आहार प्राप्त करता है। यह $\frac{1}{2}$ मिनट तक साधारणतया डुबकी लगाता है, परन्तु $\frac{3}{4}$ मिनट तक पानी में डूबा रह सकता है।

पुरानी दुनियाँ में अलवणीय (मीठे) जल भण्डारों में शीतोष्ण कटिबन्धों में यह पक्षी निवास करता है। शीत ऋतु में छिछले समुद्र तटों पर भी पाया जाता है। इनका जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार है :—

यूरोप तथा एशिया में ६०° उत्तर अक्षांश तथा फिनलैंड और उत्तरी पश्चिमी रूस में ६६° उत्तरी अक्षांश तक; पूर्व में पैसिफिक तक; दक्षिण में कर्क रेखा तक, पश्चिम में आइसलैंड छोड़कर अटलांटिक तक।

एक दूसरी उपजाति अफ्रीका में सहारा के दक्षिण होती है। तीसरी उपजाति आस्ट्रेलिया में तथा चौथी उपजाति न्यूजीलैंड में होती है।

कृष्णग्रीव वंजुल

कृष्णग्रीव वञ्जुल की लम्बाई एक फुट होती है जिसमें तीन पञ्चमांश धड़ होती है। नर और मादा के रूप एक समान होते हैं। चोंच मलीन वर्ण की होती है। सिर श्वेत होता है। चोंच सदा ऊपर की ओर झुकी ही रहती है। इसके पङ्ख पर एक श्वेत धब्बा होता है जो पङ्ख के पिछले खंड में होता है तथा बाहरी अर्द्ध भाग

तक में कुछ दूर तक बढ़ा होता है। शीत ऋतु में शीर्ष का काला रंग आँख के नीचे पहुँच जाता है तथा कानों के ऊपर तक दिखाई पड़ता है। कपोलों का श्वेत रंग एक मोटी पट्टी रूप में पिछली गर्दन तक बढ़ा होता है। ग्रीष्म में भाल स्थल कुछ अधिक ढालू हो जाता है, शीर्ष ऊँचा हो जाता है, गर्दन काली रहती है, मटमैले पीले, सुनहले रंग के परों की कलँगी पीछे पीठ की ओर बढ़ी रहती है, ऊपर नहीं उठी होती। आँख से पङ्ख की भाँति फैल कर वह कान का स्वरूप बनाती है। इसीलिए इस पक्षी का नाम कर्णिक वञ्जुल भी रक्खा गया है।

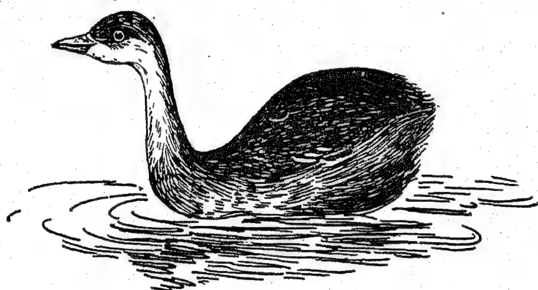
कृष्णग्रीव ¾ मिनट तक डुबकी लगाये रह सकता है। किन्तु प्राय: आधा मिनट ही डुबकी लगाता है। तैरते समय गर्दन टेढ़ी किये रहता है। डुबकी लगाने में पैरों की सहायता लेता है। इसका आहार मुख्यत: कीट हैं। मक्खी भी पकड़ लेता है। मेढक, केकड़े, घोंघे तथा कुछ पौधे भी खा लेता है। अपने पर तथा मछलियाँ भी निगल जाता है।

कृष्णग्रीव वञ्जुल शीत ऋतु में पश्चिमी पुरानी दुनियाँ, पश्चिमी उत्तरी अमेरिका तथा अफ्रिका के नरकुल भरे शान्त जलखण्डों, झीलों तथा रक्षित समुद्र तटों पर रहता है। यूरोप और एशिया के कृष्णग्रीव वञ्जुल के जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार हैं:—उत्तर में ५८° उत्तर अक्षांश तक; पूर्व में ६०° पूर्वी देशान्तर (टोमस्क), तुर्किस्तान, अफगानिस्तान तथा बिलोचिस्तान तक; दक्षिण में ईरान, ईराक, पैलेस्टाइन, भूमध्य सागर तथा उत्तरी पश्चिमी अफ्रिका तक; पश्चिम में स्पेन, फ्रान्स तथा आयरलैंड तक। एक दूसरी उपजाति अफ्रिका में सहारा के दक्षिण सभी भागों में होती है। अमेरिकीय उपजाति पश्चिमी कनाडा तथा संयुक्तराष्ट्र में उत्पन्न होतो है। यूरेशिया (यूरोप और एशिया) उपजाति का कृष्णग्रीव वञ्जुल शीत ऋतु में

कर्क रेखा तक प्रवास करता है। अमेरिको उपजाति मध्य अमेरिका तक जाती है।

रक्तग्रीव वंजुल

रक्तग्रीव वञ्जुल की लम्बाई लगभग १७ इंच होती है। जिसमें तीन-पञ्चमांश धड़ की लम्बाई होती है। इसके नर और मादा एक समान रंग-रूप के होते हैं। इनकी गर्दन लम्बी, पतली किन्तु वृहद् कंठवाल वञ्जुल से कुछ मोटी और छोटी होती है। यह भी अपनी गर्दन सीधे ऊपर खड़ी रखता है। चोंच का रंग काला, उसके आधार स्थल का पीला होता है। शिखा इतनी बड़ी नहीं होती कि



रक्तग्रीव वंजुल

जान पड़े। शीत ऋतु में कान के ऊपर उभड़ी कलंगी भी नहीं होती। शीत ऋतु में सिर का ऊपरी तल गोल दिखाई पड़ता है। शीर्ष का रंग काला होता है जो नेत्र तक फैला होता है। नेत्र के ऊपर श्वेत पट्टी नहीं होती। पृष्ठ भाग काला होता है। वृहद् कंठवाल वञ्जुल का पृष्ठभाग खाकी भूरा होता है। मटमैले रङ्ग की पङ्ख पर दो श्वेत चकत्तियाँ सदा ही रहती हैं। किन्तु वृहद् कंठवाल वञ्जुल की भाँति अगली श्वेत चकती भीतरी छोर पर कम होती जाकर पिछले पङ्ख

तक नहीं पहुँची होती है। वह आधी दूर पर ही समाप्त हो गई होती है। वृहद् कंठवाल वंजुल की अपेक्षा रक्तग्रीव वञ्जुल का अधोतल अधिक म्लान रंग का होता है। ग्रीष्म में गर्दन का सामना तथा बगल बादामी होता है। कपोल का रंग हल्का तथा श्वेत किनारी युक्त होता है।

रक्तग्रीव साधारणतया आधा मिनट तक पानी में डूबा रहता है, परन्तु एक मिनट तक भी डूबा रह सकता है। डूबने में पैरों की सहायता लेता है। इसका आहार मुख्यतया मछली और मेढक आदि है। केकड़े, घोंघे, कीड़े, केंचुए तथा कुछ वनस्पति भी खाता है।

रक्तग्रीव वञ्जुल का निवास जंगलों के मध्य विशेष घिरे जल-भंडार हैं जो शीतोष्ण कटिबंध में होते हैं, परन्तु शीत ऋतु में छिछले समुद्र तटों पर भी निवास करता है। एक जाति का जनन-क्षेत्र निम्न प्रकार है :—

उत्तर में ६५° उत्तर अक्षांश तक स्वेडेन से लेकर पूर्वी लैपलैंड तथा आरचेंगल तथा ध्रुवीय वृत्त के दक्षिण लगभग समस्त रूस में ओबी नदी और उसकी सहायक नदियों तथा बालकश झील तक; दक्षिण में यूरोप में बलगारिया, युगोस्लाविया, आस्ट्रिया, जर्मनी तक; पश्चिम में हालैंड तथा बेलजियम तक; एक दूसरी जाति का जनन-क्षेत्र बैकाल झील से एक बड़ी पट्टी पूर्व में पूर्वी एशिया, उत्तरी अमेरिका होकर लेब्रोडर तक; जिसमें मंचूरिया, रूस का समुद्र तटीय प्रदेश, उत्तरी जापान, सखालीन, कमचटका आदि भी सम्मिलित हैं। पुरानी दुनियाँ में शीतकाल में प्रवास करने वाला पक्षी कर्क रेखा तक जाता है। नई दुनियाँ में केलिफोर्निया तथा करोलिया प्रदेश तक जाता है।

लघु रक्त कंठक वंजुल

लघु रक्त कंठक वंजुल या संक्षेप में लघु वंजुल की लम्बाई केवल १० इञ्च होती है जिसमें तीन पंचमांश धड़ की लम्बाई होती है। नर और मादा दोनों का ही समान रूप होता है। भीतरी अर्द्ध-भाग पंख के पिछले खंड में श्वेत चकत्ती होती है। गर्दन छोटी होती है। चोंच काली, छोटी स्थूल होती है। उसका छोर हल्का तथा आधार स्थल पीला हरा होता है। शीत ऋतु में परों का रङ्ग भूरा हल्का होता है। उसमें कालापन या उजलापन नहीं होता। ऊपरी तल साधारण भूरा, निम्नतल उजलापन युक्त भूरा, कपोल तथा गर्दन के पार्श्व भाग मटमैले पीले (पाण्डु रङ्ग) होते हैं। ग्रीष्म में सिर अलङ्कारहीन होता है। कपोल पर काले तथा गहरे भूरे धब्बे होते हैं। कंठ गर्दन का सामना बादामी रङ्ग का होता है।

लघु वंजुल आधा मिनट तक पानी में डूबा रह सकता है। परन्तु साधारणतया चौथाई मिनट तक ही डूब कर ऊपर आ जाता है। इसी प्रकार बार-बार डुबकी लगा कर वह आहार ढूँढ़ता रहता है। उसका आहार मछली, कीड़े-मकोड़े, केकड़े, घोंघे तथा कुछ वनस्पति हैं। यह अकेले या झुंडों में रहता है।

शीतोष्ण तथा उष्ण कटिबंध के जल भंडारों में यह पक्षी पाया जाता है। नई दुनियाँ तथा आस्ट्रेलिया में इसकी जाति फैली है। जन्म क्षेत्र का विस्तार निम्न प्रकार है :—

उत्तर में आरकनी, दक्षिणी स्वेडेन, बाल्टिक प्रदेश तथा योरोपीय रूस में ५२° उत्तर अक्षांश तक और एशिया में कास्पियन, अरल, तुर्किस्तान, हिमालय, चीन, कोरिया तथा जापान तक; पश्चिम में अटलांटिक तक; पूर्व में पैसिफिक तक; दक्षिण में अफ्रीका, ईरान, भारत, बर्मा, मलाया और पूर्वी द्वीप समूह लेकर आस्ट्रेलिया

तथा टस्मानिया तक। न्यूजीलैंड में यह पक्षी नहीं होता। उत्तरी खंड के शीत भाग के पक्षी शीत ऋतु में प्रवास कर कर्क रेखा तक आ सकते हैं।

शृङ्गी वंजुल

शृंगी वञ्जुल की लम्बाई १३ इंच होती है जिसके तीन पंचमांश धड़ होती है। नर और मादा के रूप समान ही होते हैं। शीत ऋतु में श्वेत और काला रंग होता है। रक्तग्रीव या वृहद् कंठवाल वञ्जुल से अपेक्षाकृत क्षुद्र आकार तथा चंचु रखता है। कृष्णग्रीव वञ्जुल ही इसके समान आकार वाला होता है। इन दोनों को प्रकाश में निकट से देखने पर ही पहचाना जा सकता है। शृंगी वञ्जुल के मटमैले चंचु का सिरा श्वेत होता है। चंचु सीधा तथा दृढ़ होता है। शीष का काला रंग आँख के नीचे नहीं जाता। मुख तथा गर्दन के पार्श्व भाग के श्वेत रंग पिछली गर्दन पर जा मिलते हैं। ऊर्ध्व तल काला-सा होता है। निम्न तल श्वेत होता है। इसके पंख पर श्वेत धब्बा सदा ही रहता है। ग्रीष्म में गर्दन, छाती तथा बगल का रंग बादामी होता है। सिर तथा रोम की टोपी काली होती है। मटमैले पीले (पिंग) रंग के पर का प्रमुख गुच्छ आँख से पीछे की ओर ऊपर की ओर सींग की तरह उठा होता है। यही इस पक्षी के शृंगी विशेषण धारण करने का कारण है।

शृङ्गी वञ्जुल पानी में एक मिनट तक डुबकी लगा सकता है, परन्तु प्राय: चौथाई या आधा मिनट ही डुबकी लगाता है। डुबकी लगाने में पैरों की सहायता लेता है। यह अकेले या झुंडों में आहार ढूँढ़ता रहता है। इसका आहार मुख्यत: कीड़े-मकोड़े और केकड़े हैं। मछली, मेंढक, सरीसृप, घोंघे और पौधे आदि भी खाता है। अपने पर भी निगल जाता है।

शृङ्गी वञ्जुल का निवास स्थल उत्तर खंड के शान्त जल खंड हैं। शीत ऋतु में यूरोप, एशिया और उत्तरी अमेरिका के रक्षित समुद्र तटों में जाकर रहता है। जनन-क्षेत्र का विस्तार :—उत्तर में आइसलैंड, लपलैंड तथा ६५° उत्तर अक्षांश तक रूस के प्रदेश; पूर्व में सखालीन तथा आमूर नदी तक; दक्षिण में एशिया में ४८° उत्तर अक्षांश तथा यूरोप में ५६° उत्तर अक्षांश तक तथा स्वेडेन के बाल्टिक सागर स्थित द्वीप, मध्य स्वेडेन, नार्वे आदि तक; पश्चिम में फैरो तथा आइसलैंड द्वीप तक। अमेरिका के कनाडा, अलास्का आदि। पुरानी दुनियाँ का शृंगी वञ्जुल शीत ऋतु में ४०° उत्तर अक्षांश रेखा से दक्षिण कभी-कभी ही जाता है। नयी दुनियाँ में कर्क तक प्रवास करता है।



वंजुल गण (मज्जूक वंश)

कालकंठ मज्जूक

कालकंठ मज्जूक की लम्बाई दो फीट होती है। जिसमें दो तिहाई धड़ होती है। नर और मादा दोनों के रूप समान ही होते हैं। चोंच काली, क्रमशः पतली बनती हुई होती है। उत्तरा खंड महा मज्जूक से वह अपेक्षाकृत मोटी ही होती है। अधोतल श्वेत होता है। शीत ऋतु में ऊर्ध्व तल एक समान मलीन होता है। सिर का रङ्ग पीठ की अपेक्षा तनिक हल्का होता है। जनन काल में सिर तथा गर्दन का पिछला भाग खाकी होता है। गर्दन का सामना काला रहता है। पीठ का पार्श्व भाग तथा पंख के ऊपर के पर श्वेत चौड़ी पट्टी से घिरे होते हैं। शेष पृष्ठ भाग काला होता है। गर्दन तथा वक्षस्थल के पार्श्व भागों पर खड़ी-खड़ी श्वेत तथा काली लकीरें होती हैं। पानी पर से उठ कर उड़ सकने के लिए उसे जल पर दौड़ लगानी पड़ती है, परन्तु उत्तराखंड महामज्जूक की तरह मन्द गति से दौड़ नहीं लगाता।

कालकंठ मज्जूक दो मिनट तक डुबकी लगाये रह सकता है, परन्तु साधारणतया $\frac{3}{4}$ मिनट तक डुबकी लगाता है। पैर तथा पंख की सहायता डुबकी लगा सकने में लेता है। इसका आहार अधिकांशतः मछली है, परन्तु मेढक, केकड़े, घोंघे, कीट, केंचुए भी खाता है।

उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध के ध्रुवीय क्षेत्र में ग्रीष्म में कुछ खारा-पन युक्त मीठे पानी की झीलों में यह पक्षी निवास करता है। शरद ऋतु में उत्तरी पैसिफिक, उत्तरी अटलांटिक, भूमध्य सागर, काला सागर, कास्पियन तथा अरल सागर के तटों पर रहता है। इसका जनन क्षेत्र ध्रुवीय क्षेत्र है। पश्चिम एशिया की उपजाति का जनन क्षेत्र दक्षिण में उत्तरी कास्पियन, अरल तथा बाल्कश झील तक है। पूर्वी एशिया की उपजाति का जनन क्षेत्र बेरिंग के मुहाने से अलास्का, रूसी समुद्र तटीय प्रदेश, होकैडो, क्यूराइल, कमचटका, अल्यूशियन आदि है।

रक्तकंठ मज्जूक

रक्तकंठ मज्जूक की लम्बाई लगभग २ फुट होती है जिसमें दो तिहाई धड़ होती है। नर और मादा के रूप एक समान ही होते हैं। चोंच पतली, कुछ ऊपर झुकी तथा मटमैली भूरी होती है। अधोतल श्वेत होता है। शीत ऋतु में अधोतल कुछ विशेष खाकी हो जाता है तथा छोटे-छोटे श्वेत बिन्दुओं से बिन्दुकित रहता है। पिछली गर्दन तथा शीर्ष खाकी होता है। ग्रीष्म में सिर तथा गर्दन के पार्श्व भाग भस्मीय धूसरित भूरे होते हैं। पृष्ठभाग गहरा खाकी भूरा होता है। कंठ पर सपाट लाल रंग का धब्बा होता है। पानी से उठ कर उड़ सकने के लिए उसे प्रायः जल तल पर दौड़ लगानी पड़ती है। परन्तु सीधे भी ऊपर उठ सकता है। इसकी उड़ान तीव्र होती है।

रक्तकंठ मज्जूक का आहार अधिकांश मछली है परन्तु केकड़े, घोंघे, कीट, केचुए, मेढक तथा पौधे भी खा लेता है। यह जोड़े रूप या झुंडों में आहार ढूँढ़ता रहता है। इसमें डेढ़ मिनट तक पानी में डुबकी लगाये रहने की शक्ति होती है। परन्तु साधारणतया

एक मिनट तक ही पानी में डुबकी लगाये रहता है। डुबकी लगाने में पैर तथा पंख का उपयोग करता है।

रक्तकंठ मज्जूक का निवास ग्रीष्म ऋतु में ध्रुवीय तथा उप ध्रुवीय क्षेत्र के पर्वतीय तथा टुंड्रा खंड में होता है तथा शीत ऋतु के निवास स्थान उत्तरी पैसिफिक, उत्तरी अटलांटिक, उत्तरी सागर, बाल्टिक, भूमध्य सागर, काला सागर, एशिया के स्थलांतर्गत समुद्र तथा बड़ी झीलें, ईरान की खाड़ी तथा अमेरिका की दीर्घकाय झीलें हैं। जनन स्थल निम्न प्रकार हैं :—

उत्तर में ध्रुवीय क्षेत्र के चारों ओर; दक्षिण में नार्वे, स्वेडन, फिनलैंड, योरोपीय तथा एशियाई रूस के ५५° उत्तर अक्षांश तल के प्रदेश, सखालीन, उत्तरी क्यूराइल, कमचटका, कमांडर द्वीप, क्यूराइल, अलास्का, वैंकूवर द्वीप, ब्रिटिश कोलंबिया, हडसन की खाड़ी के कुछ भाग, क्वेबेक लेवेंडर प्रायद्वीप, न्यू ब्रजविक, नोवा-स्कोटिया, न्यू फाउंडलैंड, ग्रानलैंड, आइसलैंड तथा फैरो द्वीप है।

उत्तराखंड महामज्जूक

उत्तराखंड महामज्जूक की लम्बाई ढाई फुट हाती है जिसमें दो तिहाई धड़ होती है। नर और मादा समान रूप के होते हैं। चोंच काली और भारी होती है। क्रमशः पतली होकर नोकीली हो जाती है। अधोतल श्वेत होता है। शीत ऋतु में अधोतल मलीन तथा सिर पीठ की अपेक्षा कुछ अधिक काला हो जाता है। वयस्कों में पृष्ठभाग धुँधले रूप में श्वेत चकत्तियों से चित्रित होता है। ग्रीष्म में सिर तथा गर्दन लाल तथा हरे रंगों की पुट युक्त काला होता है। गले में खड़ी-खड़ी श्वेत रेखाओं से बना अधूरा पट्टा तथा छोटा कंठा होता है। सम्पूर्ण ऊपरी पृष्ठ भाग श्वेत चकत्तियों से प्रमुख रूप में चित्रत होता है। अधोतल श्वेत होता है तथा वक्षस्थल के पार्श्व

भाग में काली रेखाएँ होती हैं। उड़ने के लिए दूर तक पानी के ऊपर दौड़ लगाता है। भूमि पर से तो उड़ ही नहीं सकता। पंखों की वेगपूर्वक गति से यह तीव्र उड़ान कर सकता है। कभी-कभी गर्दन गिरा कर हवा में नीचे की ओर कुदान भी कर सकता है।

उत्तराखंड महामज्जूक ३ मिनट तक पानी में डुबकी लगा सकता है, किन्तु साधारणतया तीन-चौथाई मिनट की डुबकी ही लगाता है। इसका आहार मख्यतया मछली है, परन्तु केकड़े, केंचुए, घोंघे, अल्पायु चिड़ियाँ, सरीसृप, उभयचारी, कीट तथा पौधे भी खाता है।

उत्तराखंड महामज्जूक का निवास स्थल ग्रीष्म में उत्तरी अमेरिका की शीतोष्ण कटिबन्ध की शान्त झील तथा शीत ऋतु में उत्तरी पूर्वी पैसिफिक, उत्तरी अटलान्टिक और उत्तरी सागर है। बाल्टिक और पश्चिमी भूमध्य सागर में भी कभी-कभी प्रवास करता है। इसका जनन-क्षेत्र अत्यन्त शीत प्रदेश ही है। अलास्का, मेकेंजी नदी, हडसन की खाड़ी, ग्रीनलैंड तथा अल्यूशियम द्वीप समूह का किस्का द्वीप, आइसलैंड और पिट्सबर्गेन आदि के नाम उन स्थानों में लिये जा सकते हैं।



जलचारि गण (क्रौंच वंश)

क्रौंच

माधव प्रकाश में जन्तुओं का विभाग बताते हुए एक विभाग जांगल या स्थलचर बताया है और दूसरा विभाग आनूप या जलचर है। इस दूसरे विभाग में तटवासी तो कूलेचर नाम से पुकारे गये हैं, परन्तु सव जल के ऊपर तैरने वाले हैं। इस सव भेद का इस प्रकार उल्लेख है :—

हंस सारस कारण्ड बक क्रौंच शरारिका:।
नन्दीमुखी सकादम्बा बलाकाद्या: स्रवः स्मृता:॥

अर्थात् हंस, सारस, कारंड, बक, क्रौंच, शरारिका, नन्दीमुखी, कादम्ब और बलाका को सव कहते हैं।

क्रौंच पक्षी के पर्याय शब्द लिखते हुए मदनपाल निघंटु में निम्न श्लोक है :—

क्रौञ्चकः पेचकोऽन्यस्तु पुच्छाधोभाग लोहितः।
वक्रोशः कुररोऽचान्यः कोयाष्टि टिट्टिभस्तथा॥

अर्थात् क्रौंच पक्षी के नाम ये हैं :—क्रौञ्चक, पेचक, पुच्छाधो भाग लोहित, वक्रोश, कुरुर, कोयाष्टि तथा टिट्टिभ।

इन शब्दों की चर्चा भर कर हम आधुनिक विज्ञान द्वारा ज्ञात एक पक्षी का वर्णन यहाँ देते हैं जिसे कुछ विद्वानों ने क्रौंच नाम देना उचित समझा है। यह पक्षी बड़े आकार का होता है।

लम्बाई पौने चार फुट तक होती है जिसमें से पौने दो फुट तक लम्बोतरी गर्दन ही लम्बी होती है। उड़ान के समय यह अपनी लम्बी गर्दन सीधे आगे फैलाये रहता है। सारा शरीर सपाट धूसर रंग का होता है। चोंच अपेक्षाकृत छोटी होती है। पैर यथेष्ट लम्बे होते हैं जो उड़ान के समय पीछे मुड़े होते हैं। पंखों में पुच्छल रूप के उपपंख भी होते हैं जो पंखों के सिमटे होने पर दुम-से जान पड़ते हैं। सिर के पिछले भाग में एक लाल धब्बा होता है।

इस क्रौंच पक्षी को त्रिभुज की दो भुजाओं के आकार में पंक्ति बनाये उड़ते देखा जाता है। उड़ते समय उच्च शब्द करते जाते हैं। पंखों को धीरे-धीरे फटफटा कर ये स्थिरतापूर्वक तीव्र वेग से उड़ते जाते हैं। भूमि पर आधा खड़े होकर ही चलते दिखाई पड़ते हैं।

क्रौंच पक्षी का आहार कीड़े-मकोड़े, घोंघे, केचुए, उभयचारी, सरीसृप, छोटे पक्षी तथा दुग्धपायी जन्तु हैं, किंतु वानस्पतिक पदार्थ भी यथेष्ट खाता है। अपने आहार को चोंच से चुग कर खाता है। वनस्पतियों के जड़-मूल, पत्ते तथा दाने भी यह प्रचुर मात्रा में खाता है। यह लज्जालु किंतु चौकस पक्षी होता है।

क्रौंच पक्षी आर्द्र दलदलों में अंडे देता है। इसकी जाति का जनन क्षेत्र बाल्टिक सागर के आस-पास के प्रदेश तथा यूरोपीय रूस है। स्पेन, बाल्कन तथा एशिया माइनर में भी बचे-खुचे दल संतानोत्पादन करते हैं। यूरोप के प्रदेशों से शीत ऋतु में प्रवास करने यह अफ्रिका में भूमध्य रेखा तक के प्रदेशों में पहुँचता है। किन्तु बन्दी बना कर तो किसी भी भूखंड में इसे रखा जा सकता है।

क्रौंच की एक दूसरी उपजाति दक्षिणी एशियाई रूस में होती है।

सारस

माधवप्रकाश में जल में चरने वाले (स्लव) पक्षियों में सारस की भी गिनती की गई है। इसके पर्याय शब्द मदनपाल निघंटु में निम्न दिये हैं :—

सारसो, लक्ष्मणो, रक्तमूर्द्धास्यात् पुष्कराह्वयः।

अर्थात् सारस के नाम लक्ष्मण, रक्तमूर्द्धा तथा पुष्कराह्वय है।

सारस के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों द्वारा रंग, रूप तथा स्वभाव का वर्णन सुलभ है। यह गिद्ध से भी ऊँचा पक्षी है। खड़े होने पर मनुष्य बराबर यह ऊँचा होता है। इसका रूप बक सरीखा ही होता है। शरीर का रंग धूसर वर्ण का होता है। पैर लम्बोतरे तथा लाल रंग के होते हैं जिन पर पर नहीं उगते। सिर तथा गर्दन भी नग्न होती है जिनका रंग लाल होता है। यह खेतों तथा उथले पानी के स्थलों में पाया जाता है। नर और मादा के रूप समान होते हैं। जोड़े रूप में यह घूमकर चारा चुगता रहता है।

सारस की एक जाति उत्तरी तथा मध्य भारत, गुजरात और पश्चिमी आसाम में प्रसारित होती है। पूर्वी आसाम तथा बर्मा में दूसरी जाति रहती है जिनका रंग अधिक गहरा होता है तथा कुछ अन्य विभिन्नताएँ भी होती हैं। उसे ब्राह्म सारस कहते हैं।

भारत सारस या ब्राह्म सारस क्रौंच वंश के ही पक्षी हैं। इस वंश की ही कोई प्रजाति साधारण क्रौंच या खर क्रौंच के नाम से ज्ञात है तथा कोई सारस नाम से। ऐसी ही कितनी प्रजातियों के वंश मिलकर जलचारिगण पक्षियों की श्रेणी बनाते हैं। क्रौंच वंश के भारतीय पक्षियों में सारस सबसे बड़ा होता है। यह जल-प्रचुर मैदानों में ही रहना पसन्द करता है। इसे खेत में भी प्रायः देखा

जा सकता है । जहाँ नदी या झील के तट उथले जल वाले हों, वह इसे विशेष प्रिय स्थान होता है ।

सारस सदा ही जोड़े रूप में पाया जाता है । साथ में बच्चे भी कभी-कभी होते हैं, परन्तु इसका झुण्ड कभी-कभी ही पाया



सारस

जाता है । सारस का जोड़ा आजीवन साथ रहता है, कभी स्फुट नहीं होता । जोड़े में से एक के मारे जाने पर दूसरा उस स्थान का ही सप्ताहों तक विलाप करता, शोक करता चक्कर लगाता रहता है । शोक में उसे मर जाते भी देखा गया है । यह स्नेह का अद्भुत

उदाहरण ही है। लोग इसे पालते भी हैं। उस समय यह धृष्ट और निडर होकर पुरुषों के निकट खेतों में चरता रहता है।

भारी भरकम शरीर होने से सारस बड़ी कठिनाई से ही आकाश में उड़ने के लिए ऊपर उठता है। परन्तु एक बार ऊपर पहुँच कर वायुवाही हो जाने पर तो यह बड़ी ही भव्यता से उड़ान करता है। पंखों के शनैः-शनैः फटफटाने से यह तीव्रतया उड़ सकता है, किंतु धरती से कुछ गज ऊपर तक ही इसकी उड़ान देखी जाती है। उड़ान के समय इसके पैर तो पीछे मुड़ कर आड़े रूप में हो गये होते हैं और गर्दन आगे की ओर सीधी होती है। सारस की बोली तुरही के शब्द की तरह तीव्र होती है। धरती पर रहते या उड़ते समय वह ऐसे शब्द करता है। इसका आहार दाने, अंकुर, अन्य वानस्पतिक पदार्थ तथा कीड़े-मकोड़े, सरीसृप और घोंघे हैं।

सारस का घोंसला भी उसकी लम्बाई के अनुरूप ही होता है। नरकुल और घास-पात आदि जुटा कर वह जो घोंसला बनाता है, उसका ऊपरी व्यास ३ फीट होता है। धान के जल भरे खेतों, दल-दलों, झीलों या उथले पानी में यह घोंसला बनाता है। अण्डे मादा द्वारा सेये जाते हैं जिसमें नर भी सहायता करता है, वह बड़ी चौकसी से पहरा देता है।

खर क्रौंच

खर क्रौंच का "कर्र कर्र" शब्द करने के कारण ही "करकरा" नाम हिन्दी में प्रचलित है। वही गुण संस्कृत में खर विशेषण से व्यक्त किया गया है। खड़े होने पर यह ३ फुट ऊँचा होता है। इसके शरीर का रंग धूसर होता है तथा पैर बड़े लम्बे होते हैं। सिर तथा गर्दन के पार्श्व भाग काले रंग के होते हैं। निचली गर्दन के पर लम्बे-लम्बे होते हैं तथा वक्षस्थल पर गिरते दिखाई पड़ते हैं।

आँखों के पीछे कानों के ऊपर की कलँगी निर्मल श्वेत रंग की होती है। चने, गेहूँ आदि के खेतों में झुंड के झुंड मिलते हैं। नर और मादा का रूप एक समान ही होता है। यह हमारे देश का स्थायी निवासी नहीं होता। केवल शीत ऋतु में प्रवास करने आता है।

साधारण क्रौंच पक्षी खर क्रौंच से कुछ बड़े आकार का होता है तथा सिर के पिछले भाग में लाल धब्बे से स्पष्ट पहचान लिया जाता है। वह भी शीत ऋतु में प्रवासी पक्षी ही होता है। खर क्रौंच के साथ वह भी प्रचुर संख्या में भारत में प्रवास करता पाया जाता है।


खर क्रौंच

खर क्रौंच उत्तरी भारत में सर्वत्र तथा दक्षिण में मैसूर तक शीत ऋतु में पाया जाता है। आसाम और बर्मा में भी यह प्रवासी होता है।

सैकड़ों की संख्या में क्रौंच पक्षी गेहूँ तथा चने के खेतों में नव अंकुर खाते मिलते हैं। अक्टूबर में ही इनका दल आ पहुँचा होता है जब रबी के खेतों में अँखुए निकलने प्रारंभ हो चुके होते हैं। मार्च के अन्त में जब फसल पक कर कटने के निकट आ जाती है तो शीत ऋतु का प्रवास समाप्त जान ये फिर अपने देश को वापस

चले जाते हैं। श्रमिकों के मध्याह्न अवकाश की भाँति इन पक्षियों को भी दोपहर को कहीं जलाशयों, रेतीले मैदानों आदि में बैठे, विश्राम करते या आकाश में ऊँचाई पर मँडराते पाया जाता है। ये पक्षी संकोची तथा सतर्क होते हैं। इनका झुंड जब आहार चुगता रहता है तो उस मंडली के चारों ओर इसके पहरेदार तैनात रहते हैं जो शंका होते ही भय की सूचना दे देते हैं। उड़ान में त्रिभुज की दो भुजाओं के आकार में जब इनका दल होता है तो कोण या शीर्ष बिन्दु पर नेता रहता है। उसके किसी कारण मृत होते ही अन्य पक्षी नेता बन जाता है। खुले में विश्राम कर भी ये अपनी रक्षा सजगता से कर लेते हैं।

प्रवासी होने के कारण सामूहिक रूप से रक्षा का प्रबन्ध इन्हें जीवित रखता है। पहरेदारों को रख कर ही ये खुले स्थानों में बसेरा लेते हैं। अतएव इन्हें पकड़ना कठिन होता है।

खर क्रौंच का आहार मुख्यतः अनाज के पौधों के नये अँकुर, दाने और कोंपल आदि हैं, किन्तु छोटे-मोटे सरीसृप, कीड़े-मकोड़े भी उदरस्थ हो जाते हैं।

खर क्रौंच का जनन क्षेत्र दक्षिणी यूरोप, अलजीरिया की उच्च अधित्यका, मध्य तथा उत्तरी एशिया का मंगोलिया तक का भाग है। इसका घोंसला सारस से कुछ छोटा है। यह दो अंडे देता है जिनका रंग हरापन या पीलापनयुक्त धूसर होता है तथा लालिमा-युक्त भूरे तथा धूसर रंग की जहाँ-तहाँ चित्तियाँ भी होती हैं।



टिट्टिभरूप गण (दिवा कुररी वंश)

गंगा कुररी

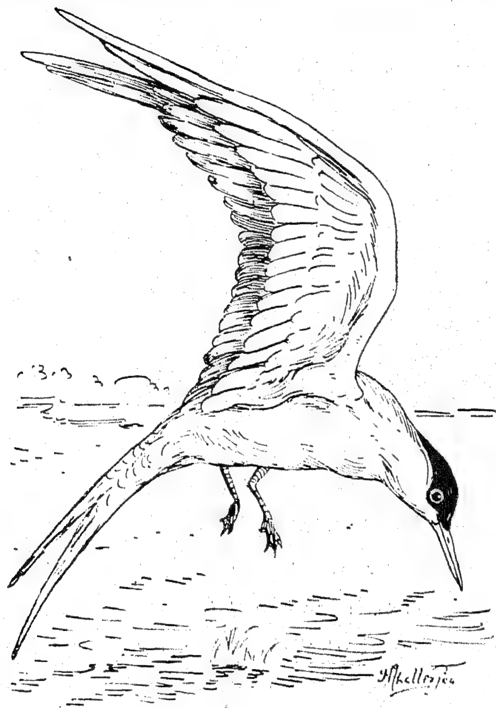
स्था० नाम—किनई (सिंध)

गंगा कुररी की लंबाई १६ इञ्च होती है। नर और मादा समान रंग के होते हैं। शरीर का रंग शीत काल में शीर्ष पर मटमैला धूसर और ऊपरी तल पर धूसर होता है। अधोतल धूसर युक्त श्वेत होता है। ग्रीष्म काल में सिर के ऊपरी तथा पार्श्व भाग का रंग काला किन्तु हरे रंग की पुट युक्त होता है। प्रत्येक आँख के नीचे एक श्वेत धब्बा होता है, नेत्र का रंग भूरा, चोंच का रंग गहरा पीला और पैरों का रंग लाल होता है। चोंच लंबी, पतली होती है। पादाङ्गुलियाँ छोटी होती हैं सामने की पादाङ्गुलियाँ अङ्गुलिजालमय हाती हैं। पंख तथा पुच्छ लंबे हाते हैं। पुच्छ गहराई तक दो फांकों में फटी होती है।

यह पक्षी अपने श्वेत तथा धूसर रंग के शरीर तथा सिर पर काला रंग होने से स्पष्ट पहचाना जाता है। यह सदा जलखडों के निकट ही पाया जाता है।

यह भारत, बर्मा तथा मलाया में पाया जाता है। यह बारह-मासी पक्षी है किन्तु जल की सुलभता की दृष्टि से स्थानान्तर करता है। यह विशेषतया नदी का पक्षी है। अकेले या झुण्ड रूप में पाया जाता है। यह भारत की उन सभी नदियों में पाया जाता

है जो मैदानी भागों में बहती हैं। झील या तालाबों में कभी-कभी ही जाता है। यह नदी के जल पर दृष्टि लगा कर २० या ३० फुट की ऊँचाई पर उड़ता रहता है। शिकार पर दृष्टि पड़ते ही उतर पड़ता



गंगा कुररी

है। पानी पर सीधे गिरकर यह मछली पकड़ लेता है और उड़ते रहते ही उसे खा जाता है। यह कभी वृक्षों पर नहीं बैठता, न पानी पर तैरता या उसमें डुबकी लगाता है। पेट भर जाने पर

अपनी ही जाति या अन्य पक्षियों के झुण्ड में तट पर बैठा आनन्द लेता है।

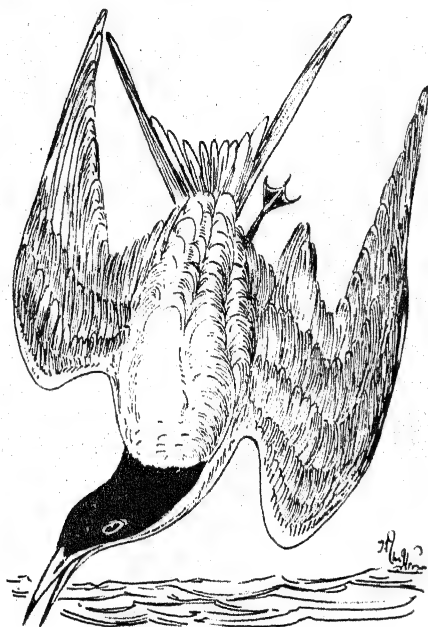
यह मार्च से मई तक खुले रेतीले तट पर अंडे देता है। द्वीपों या तट पर एक दूसरे के निकट गंगा कुररी अंडे देते हैं। निकट जाने पर ये हंगामा मचा देते हैं। दो या तीन अंडे एक बार में दिये जाते हैं।

प्रख्यात कुररी

प्रख्यात कुररी की लंबाई १४ इञ्च होती है। लाल चोंच की छोर काली होने से ग्रीष्म में इसकी पहचान हो जाती है। शीत-ऋतु में चोंच काली हो जाती है केवल आधार स्थल की ओर थोड़ी लाल रहती है। यह मछली पकड़ने के लिए ऊपर से सीधे जलतल पर गिरता है या जल को स्पर्श कर उड़ते हुए मछली पकड़ता है। केकड़े, केचुए, घोंघे और कीट आदि आहार हैं। यह बराबर झुंडों में रहता है।

इसका जनन-क्षेत्र शृङ्खला रूप में अमेरिका और एशिया में पाया जाता है। अमेरिका में मेक्सिको की खाड़ी, उत्तरी केरोलिना से सेंटलारेंस की खाड़ी तक समुद्र तट, विशाल झीलों के प्रदेश तथा हडसन की खाड़ी तक जनन-क्षेत्र है। यह क्षेत्र यूरोप की ओर बढ़कर यूरोप एशिया की शृङ्खला से मिला है। यूरोप और एशिया में जनन-क्षेत्र का प्रसार ध्रुववृत्त तक स्थल से घिरे समुद्र, श्वेत-सागर तथा पश्चिम में ब्रिटेन तक, दक्षिण में भूमध्यसागर तथा ट्यूनिशिया तक, पूर्व में ईरान तथा पश्चिमी एशियाई रूस तक है। अन्य उपजातियाँ तिब्बत और पूर्वी एशिया में पाई जाती हैं। यह शीत ऋतु में प्रवास कर दक्षिणी अमेरिका के हार्न अंतरीप तक

तथा पश्चिमी अफ्रिका होकर उत्तमाशा अंतरीप (केप आफ गुड होप) तक जाता है। एशिया में अरब सागर और मडगास्कर तक



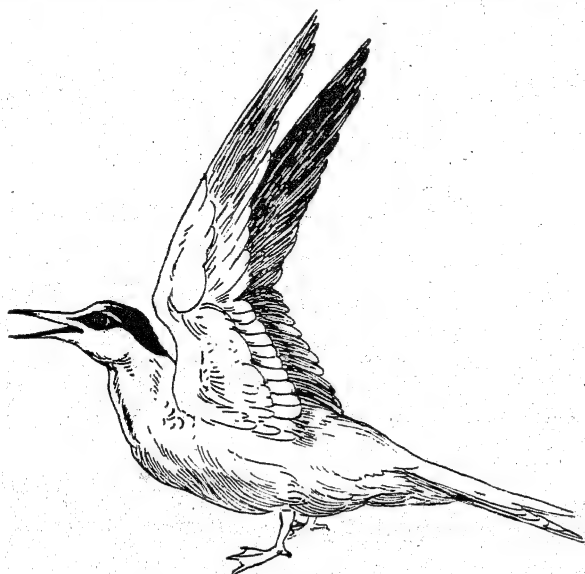
प्रख्यात कुररी

प्रवास करने पहुँचता है। भारत में पश्चिमी समुद्र तट पर आता है।

कुररिका

कुररिका की लम्बाई नौ इञ्च होती है। सिर पर काली टोपी होती है। भाल श्वेत होता है। पंख पतली होती है। चोंच, पैर तथा

पंजों का रंग वयस्क कुररियों में पीला होता है। परन्तु अल्पवय में मटमैला पीला होता है। यह अकेला या छोटे झुंड में पाया जाता



कुररिका

है। यह बराबर "क्विक इक इक" की ध्वनि उच्चारित करता रहता है। उड़ने पर तिरि डिडि तिरिविर सा शब्द मुख से निकालता है।

इसका जनन-क्षेत्र स्थल तथा समुद्र तटों पर पश्चिम में ब्रिटेन तक, उत्तर में दक्षिणी पूर्वी बाल्टिक तक, दक्षिण में उत्तरी पश्चिमी अफ्रिका, भूमध्य सागर तथा ईरान तक और पूर्व में दक्षिणी पश्चिमी एशियाई रूस तक। अफ्रिका, पूर्वी द्वीप समूह और अमेरिका में अन्य उपजातियाँ पाई जाती हैं। यह प्रवास कर उत्तर के जनन-क्षेत्र से दक्षिण भूमध्यसागर के कुछ दक्षिण तक जाता है।

सर्वांगुलिजाल गण (जलकाक वंश)

भारत मद्गु या सर्प पक्षी

पानी में सर्प के गिर जाने पर एक विचित्र दृश्य दिखाई पड़ता है। सर्प तो पानी का जन्तु नहीं है। अतएव नासिका ही से श्वास लेकर जीवित रह सकता है। अतएव पानी में सारा अंग डूबा रहने देकर अपना मुख तथा शरीर का कुछ अग्रभाग पानी के ऊपर रख कर भागता है मानो कोई खड़ी लकड़ी गतिमान हो। उसी तरह एक पक्षी अपनी लम्बी, शल्य (भाला या बल्लम) नुमा चोंच पानी के ऊपर किये इस प्रकार चलने का प्रयत्न करता है कि सारा धड़ पानी में ही रहे। यही सर्पपक्षी या शल्य क्षेपक पक्षी है। क्षेपक का अर्थ फेंकना है। वह अपनी भालानुमा चोंच वेग से किसी दिशा में शिकार पर फेंक सकता है, अतएव वह शल्यक्षेपक भी है।

शल्यक्षेपक एक काला जल पक्षी है जिसकी पीठ पर रुपहली धूसर धारियाँ खड़े रूप में बनी होती हैं। सिर तथा गर्दन का रङ्ग मखमली भूरा होता है। कंठ तथा हनु का रङ्ग उजलापन युक्त होता है। पूँछ लम्बी और गावदुम होती है। गर्दन बड़ी लम्बी, कोमल तथा मुख पतला होता है जिसमें भालानुमा नुकीली लम्बी चोंच होती है। नदी और तालाबों के अन्दर या निकट अकेले या स्फुट मंडली में यह पाया जाता है। नर और मादा समान रूप के होते हैं।

शल्यक्षेपक चश्मों, नदियाँ, तालाबों, झीलों आदि में जल,

विहार करता रहता है। नदियों के विशाल मुहानों तथा खाड़ियों में भी पाया जा सकता है, परन्तु समुद्रतट पर निवास नहीं करता। जिन जलाशयों या झीलों में वृक्षों के खूंट आंशिक जलमग्न हों वहाँ इसे रहने में विशेष आनन्द आता है। इसे अकेले या दो चार के



भारत मद्गु या सर्प पक्षी

झुण्ड में तो पाया ही जाता है परन्तु उपयुक्त वातावरण होने पर सौ-पचास की मंडली भी जुट जाती है। अपनी तैराकी वृत्ति से यह अधिकांश समय जल तल पर तैरता रहता है। शरीर का अधिकांश जलमग्न रखकर केवल नोकीले सिरे की लम्बी चोंच ही जल के ऊपर नचाता चलता है। तीव्र वेग से मछलियों का पीछा कर उन्हें आहार बनाता है। सिर और गर्दन आगे-पीछे फेंकता हुआ बल्लमधारी की तरह अपना बल्लम साधने का उद्योग करता जब तैरता है तो मछली तक चोंच का निशाना लग सकने पर भालानुमा चोंच विद्युत् वेग

से शिकार की ओर फेंकता है। जल के ऊपर आकर यह मछली को उदरस्थ कर लेता है। गर्दन की एक विशेष कसेरुका उसे अपनी चोंच वेग से फेंक सकने में समर्थ बनाती है। जल के बाहर होने पर किसी खूंट या वृत्त पर बैठकर अपने पंख और दुम फैलाकर सुखाता-सा है। पानी के ऊपर कोई वृत्त की डाल लटकी होने पर उसे शिकार के लिए पानी के भीतर सीधे कूदकर मार्ग की टहनियों को भी नीचे घसीटने का खेल कर पानी में पहुँचते देखा जाता है। भीतर जाकर भी पुनः चोंच ऊपर कर श्वास लेता है।

शल्यक्षेपक भारत में पाया जाता है। सीलोन, बर्मा तथा अधिक पूर्व में मलाया प्रायद्वीप, हिन्दचीन, सेलेबीज तथा फिलीपाइन द्वीप तक पाया जाता है। यह पक्षी भी अन्य जलपक्षियों, बक, जलकाक, हंसक आदि के झुण्डों में ही अपना घोंसला बनाता है। जनन ऋतु में इसे 'चीगी, चीगी' की ध्वनि उत्पन्न करने पाया जाता है।



शल्य विज्ञान की कहानी

प्राचीन काल में प्रागैतिहासिक युग में भी चीर-फाड़ के प्रमाण किस प्रकार मिलते हैं ? जब किसी विज्ञान का ही सर्वथा अभाव नहीं था, बल्कि सभ्यता का भी विकास नहीं हुआ था; लोहे, ताँबे, काँसे आदि के भी हथियार नहीं बने थे, तब भी संसार के किसी कोने में कठोर, नोकीले पत्थरों से ही मनुष्य अपनी खोपड़ी क्यों स्वेच्छा से फोड़वाता था ? सभ्यता का उदय होने पर भारत, चीन, मिस्र, यूनान, रोम, अरब आदि देशों ने किस तरह चीर-फाड़ की विद्या या शल्य-विज्ञान का प्रारम्भ किया ? मध्य युगों में किस प्रकार घोर अंधकार का फैलाव रहा ? किस तरह कब्र से मुर्दे उखाड़ या चोरी कर कहीं-कहीं लोगों ने चीर-फाड़ का विशेष ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ किया ? इन बातों की लोमहर्षक तथा विलक्षण कहानी इस पुस्तक में दी गई है।

भारत में प्राचीन काल में किस प्रकार के यंत्र तथा शस्त्र भारतीय प्राचीन चिकित्सकों द्वारा प्रयोग किये जाते थे ? धन्वंतरि कौन थे ? उन्होंने शल्य विज्ञान का किस प्रकार प्रारम्भ किया ? सुश्रुत संहिता में शल्य-विज्ञान का वर्णन किस प्रकार मिलता है ? इन बातों की चर्चा भी मूल श्लोकों को देकर की गई है।

इन रूपों में शल्य-विज्ञान के प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास के साथ आधुनिक शल्य-विज्ञान का अत्यन्त विलक्षण, उन्नत शल्य-विज्ञान का भव्य वर्णन भी इस पुस्तक में पढ़ें। हिन्दी में नवीन तथा प्राचीन शल्य-विज्ञान की चर्चा प्रथम बार एकत्र पढ़ने का अवसर इस पुस्तक द्वारा प्राप्त करें।

मूल्य २) रु०

किताब महल * प्रकाशक * इलाहाबाद

आविष्कारकों की कहानी

इन जीवन-कथाओं में उन वातावरणों का मनोरम चित्रण है जिनमें आविष्कारकों को रह कर अपनी अनुपम बुद्धि तथा कार्य-शक्ति का उदाहरण रखना पड़ा होगा। बेल, एडिसन, मारकोनी आदि के नाम तो हमें जब-तब सुनने को भी मिलते हैं; परन्तु हम यह नहीं अनुभव करते कि किस प्रकार अपने परिवार के सदस्यों से भी छिप कर, उनके तानों से बचने का उद्योग कर मारकोनी को रात-दिन ऐसी कल्पना को मूर्त्त रूप देने का साहस रखना पड़ा जिसे आज बेतार का तार कहा जाता है। इन प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त अपने पुत्र को मनोरंजन की सामग्री देने के लिए वयोवृद्ध डनलप को अकस्मात् पहिये की ठोस हाल के स्थान पर वायुभरी रबड़ नली रखने की सूझ उस समय विशेष महत्त्व की भले ही न जान पड़ी हो; परन्तु आज हमें उस घड़ी की स्मृति विशेष उत्प्रेरणा का कारण होती है। फोर्ड को अपनी भीषण आर्थिक विपत्ति तथा दर्जनों अभियोगों में पराजय से साहस छोड़ देने का एक भी क्षण आ सका होता तो आज हम फोर्ड द्वारा निर्मित इतनी सस्ती जनसुलभ मोटर गाड़ियाँ न देख पाते। विलियम फ्रीजी ग्रीनी का नाम आज फिर से स्मृत किया जाने लगा है जिसने चलचित्र का आविष्कार कर संसार को विलक्षण मनोरंजन की सामग्री उपस्थित किया; परन्तु अपने जीवन में दिवालिया बन कर वह अनेक बार जेल की हवा खाता रहा। इसी तरह सभी कहानियाँ विलक्षण हैं।

मूल्य २) रु०

किताब महल * प्रकाशक * इलाहाबाद

अच्छी पुस्तकें अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं

और

हम आपको आपके व्यक्तित्व के निर्माण-कार्य में यथाशक्ति सहायता प्रदान करने के लिए उत्सुक हैं। यदि आपका नाम अन्य हजारों ग्राहकों की भाँति हमारी उस सूची पर लिखा हुआ नहीं है, जिन्हें हम बराबर अपने नये प्रकाशनों की सूचना देते रहते हैं तो आज ही एक कार्ड अपने नाम पते सहित हमारे पास लिख भेजें। एक बार आपका कार्ड मिल जाने पर हम आपको नियमित रूप से विविध प्रकार के मनोरंजक साहित्य के—जिनमें उपन्यास, (जासूसी और सामाजिक) कहानी संग्रह तथा अन्य साहित्य आदि भी सम्मिलित हैं—नये प्रकाशनों की खबरें भेजते रहेंगे। अपने यहाँ के किसी भी पुस्तक-विक्रेता से हमारी पुस्तकें माँगें। अगर कोई दिक्कत हो तो सीधे हमें लिखें।

एक और परामर्श

(१) आप आजकल के बढ़े हुए डाकखर्च से परिचित ही होंगे। स्थिति यह है कि एक रुपये की पुस्तक डाक द्वारा मँगाने पर लगभग एक रुपया ही व्यय पड़ जाता है। इसलिए अपने यहाँ के पुस्तक-विक्रेता से अनुरोध कीजिये कि वह आपकी रुचि की पुस्तकें हमसे मँगाये। हम पुस्तक-विक्रेता को भी सुविधाएँ देंगे और आपकी भी बचत में सहायक होंगे।

(२) यदि कोई पुस्तक-विक्रेता आपके अनुरोध पर विचार न करे तो आप उसका नाम-पता हमें लिख भेजिये। आपकी सुविधा के लिए हम उनसे आग्रह करेंगे कि वे आप द्वारा माँगी गयी पुस्तकें अपने यहाँ रखें।

किताब महल ● प्रकाशक ● इलाहाबाद